

ISSN 2394-1723

वर्ष 26 अंक 299, 16-30 सितंबर 2020

वार्षि

भारतीय भाषा परिषद की पत्रिका

स्त्री के नए सवाल

कविताएँ, कहानियाँ और आलेख

मेरी ऑलिवर (अमेरिका) और आयथुराइ सांथन (श्री लंका) की रचनाएँ

कहानियाँ

उर्मिला शुक्ल शर्मिला बोहरा जालान

मीरा बाई और सर्वेश्वर दयाल सकरीना पर विशेष



बच्चों की दुनिया का हाल

संरक्षक
इंद्रनाथ चौधुरी
स्वप्न चक्रवर्ती

संपादक
शंभुनाथ

प्रबंध संपादक
प्रदीप चोपड़ा

प्रकाशक
डॉ. कुसुम खेमानी

संपादन सहयोग
अंक सज्जा
सुशील कान्ति

संपादकीय विभाग
36 ए, शेक्सपियर सरणी
कोलकाता-700017
vagarth.hindi@gmail.com
7449503734
दिन 12 बजे से संध्या 6 बजे तक

आवरण
तारक नाथ राय

भारतीय भाषा परिषद की पत्रिका

वर्ष 26, अंक 299, 16–30 सितंबर 2020

धर्म और
स्त्री का भविष्य
संपादकीय 5



इस अंक में

बहस

बच्चों की दुनिया का हाल
आरती स्मित/अर्चना सिंह
देवेंद्र मेवाड़ी

(प्रस्तुति : प्रतिभा सिंह) 42



कविताएँ

ज्योति चावला/स्वाति मेलकानी
मालिनी गौतम/पद्मजा शर्मा
वंदना बाजपेयी/सोनू चौधरी
अनामिका अनु/मनीषा झा
नीतू सिंह भदौरिया 11



कहानियाँ

साल वनों के साथे :

उर्मिला शुक्ल 75

मूनलाइट सोनाटा :

शर्मिला जालान 90



स्मृति से एतराज

मीरा : मेरी जड़े हैं फिर भी
प्रवहमान हूँ

उपमा ऋचा 113

सर्वेश्वर जी से जुड़ी यादें

प्रयाग शुक्ल 122



विश्वदृष्टि

अमरीकी कविताएँ

मेरी ऑलिवर

(अनुवाद : झरना मालवीय) 37

मर्मांतक (श्री लंका की कहानी)

आयाथुराई सांथन

(अनुवाद : ननी शूर) 107



विविध : कार्टून 139

लघुकथा

संतान

मृणाल आशुतोष 106



आलेख

अस्मिता का बदलता अर्थ

: रजनी पांडेय 130



बतरस

मारवाड़ी राजबाड़ी :

कुसुम खेमानी 140



कृपया 'वागर्थ' ऑनलाइन मित्रों को शेयर करें।
लेखक सिर्फ अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।

सदस्यता संपर्क

साधारण डाक खर्च सहित वार्षिक सदस्यता : 300 रुपए

तीन साल : 850 रुपए

आजीवन : 3000 रुपए : विदेश : वार्षिक : 40 डॉलर

भारतीय भाषा परिषद के नाम से चेक या ड्राफ्ट भेजें

एजेंसियों और सदस्यों द्वारा चेक से भुगतान bharatiya bhasha parishad के नाम
या नेफट द्वारा : कोटक महिंद्रा बैंक, शाखा : लाउडन स्ट्रीट,

A/c no- 8111974982, IFSC code-KKBK0006590 पर उपर्युक्त नाम से किए जा सकते हैं।
भुगतान के बाद एसएमएस कर दें—मो.9163372683 : मीनाक्षी दत्ता (सदस्यता और बिक्री)

धर्म और स्त्री का भविष्य

ऋषि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी गार्गी के लगातार सवाल करने पर गुस्से से कहा था, ‘इससे आगे कुछ पूछा तो तुम्हारे सिर के टुकड़े हो जाएंगे।’ अस्पष्ट नहीं है कि ज्यादा सवाल करने पर किस नतीजे की ओर इशारा किया गया है। प्राचीन युगों की तरह आधुनिक युग में भी स्त्रियां सवाल करने से रोकी जाती रही हैं या उनकी हिम्मत की हड़ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से बांधी जाती रही है। आमतौर पर वे राष्ट्र में ‘वीरांगना’ और बाजार में ‘कमोडिटी’ बनने के लिए अभिशप्त होती हैं। उनके सवालों की हड़ का चालाकी से निर्धारित होते जाना क्या स्त्री विमर्श को आत्मनिरीक्षण के लिए उत्प्रेरित करता है?

हमारी धार्मिक परंपरा में लंबे समय से स्त्रियों को ‘माया’ माना गया। आंखें झुकाए बिना जरा-भी बराबरी दिखाने, सवाल करने या स्वतंत्रता लेने पर उन्हें ‘कुलटा’, ‘पुरुषों पर काला जादू करने वाली’, ‘दुष्टा’, ‘पारिवारिक प्रतिष्ठा पर दाग’ आदि कह कर युगों से अपमानित किया जाता रहा है। कहना न होगा

कि किसी स्त्री की डाइन-छवि निर्मित करने और उसे सजा देने के पुरुष-सत्तात्मक सुख में स्त्रियां भी सहज शामिल रहती हैं।

इधर मीडिया इस कदर स्वत्वविहीन है कि कोई खबर बिना रंग-पोते प्रसारित होने नहीं दी जाती। टीवी पर बहस की जगह फ्री-स्टाइल कुश्ती होने लगी है, निरर्थक चिल्ला-चिल्ली। उसके निशाने पर इधर स्त्री भी कम नहीं है। टीवी



एक उदार धार्मिक परिवेश में ही स्त्री अपनी मेधा और हक के प्रति जागरूक रह सकती है, अन्यथा कट्टर धार्मिक परिवेश में सिर्फ गुलामी की सीढ़ियां होंगी। ये उसे अतीत के ऐसे अंधेरे का हिस्सा बना सकती हैं, जहां उत्पीड़न और अपमान के सिवाय और कुछ नहीं है।

का मामला भी है। इसमें स्त्री की ‘डाइन-छवि’ बनाई जा रही हो या ‘वीरांगना-छवि’ – ये एक ही पितृसत्तात्मक सिक्के के दो पहलू हैं।

दुनिया भर में धर्म पितृसत्तात्मक हैं। इसका भी प्रचार हर जगह है कि स्त्रियां हैं तो धर्म बचा है। यह सब बोल-बोल कर स्त्री की पर-अधीनता सतयुग के स्मृति-चिह्न के रूप में मौजूद है। धर्म का संकुचित रूप स्त्री को पूजा-पाठ, खासतौर से उसके लिए बने व्रत-उपवास और मर्यादा में रहने की धूंटी देते रहते हैं। धर्म स्त्री के बंधनों का ही संरक्षण नहीं करता, उसकी समस्त कल्पनाशीलता और बौद्धिकता को भी नियंत्रित करता है। स्त्री के लिए खास तौर से बनी कई वर्जनाएं होती हैं जिनके बारे में स्त्री भी सामान्यतः यही सोचती है कि ये जरूरी हैं, तथ्यपूर्ण हैं।

राष्ट्रीय जागरण की एक महत्वपूर्ण धुरी स्त्री रही है। नवजागरण ने उसे स्वतंत्रता की सीढ़ी दिखाई। लेकिन 19वीं सदी में स्त्री को केंद्र में रख कर जो सुधार आंदोलन चले, उनका बौद्धिक प्रभाव अब मिट चुका है। स्त्रियों के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने और राजनीति में उनकी हिस्सेदारी – 20वीं सदी की इन दो खास उपलब्धियों के बावजूद वस्तुतः जेंडर मुद्दे का व्यापक कूपमंडूकीकरण किया जा चुका है। नतीजतन स्त्री-पुरुष गैर-बराबरी, स्त्री के रूढ़ियों से अधिक जकड़े जाने, स्त्री-मेधा के कम सम्मान आदि

चैनल पितृसत्ता का इस सीमा तक ध्वजवाहक बन गए हैं कि देश-दुनिया की सारी महत्वपूर्ण घटनाएं, यहां तक कि कोरोना महामारी के तथ्य भी दब गए। टीवी चैनल फिल्मों की ड्रग और भोगवादी संस्कृति की सड़न में लोटने लगे। इन्होंने बाढ़, सीमा-विवाद, महा-बेरोजगारी आदि समस्याओं को दृश्य से बाहर कर दिया। यह भय के दौर में स्त्रियों से क्रूर मनोरंजन करने

को लेकर सामाजिक चिंताओं में छास आया है। कहा जाए तो जिस तरह नई डिजाइन की ज्वेलरी को स्त्री के बाह्य ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला माना जाता है, उसी तरह अब स्त्रीत्व की पुरानी धारणाओं- आज्ञाकारिता, धार्मिक पूजा-पाठ, यौन पवित्रता, गृह कार्य में समर्पण, स्त्रैणता आदि को आंतरिक ऐश्वर्य का

**हम स्पष्ट तौर पर देखते हैं
कि हिंदू धर्मध्वजवाहक हो
या मुल्ला-मौलवी, वे
स्त्री-पुरुष बराबरी के सख्त
विरोधी हैं। वे मानते हैं कि
स्त्री-पुरुष की क्षमताएं और
जिम्मेदारियां भिन्न हैं। यदि
खुद धर्म पितृसत्तात्मक
प्रकृति का हो तो रुढ़िवादी
धर्मरक्षक उदार कैसे हो
सकते हैं!**

लक्षण माना जाने लगा है। कोई स्त्री यदि अपनी इच्छा के कपड़े पहने, अपनी इच्छा से प्रेम करे और स्वतंत्र मिजाज दिखाए तो वह मर्यादा तोड़नेवाली ‘बिगड़ेल’ समझी जाती है। इसके लिए ‘पिता’ दोषी माने जाते हैं और किसी न किसी रूप में स्त्री ‘पवित्र झुंड’ का शिकार बन जाती है। कुछ नहीं तो सोशल मीडिया में दुःशासन भरे पड़े हैं।

धार्मिक कट्टरवाद पितृसत्तात्मक नियंत्रण बढ़ाता है, जबकि धार्मिक उदारवाद स्त्रियों की वैयक्तिक

स्वतंत्रता और गरिमा की रक्षा करना सिखाता है। एक उदार धार्मिक परिवेश में ही स्त्री अपनी मेधा और हक के प्रति जागरूक रह सकती है, अन्यथा कट्टर धार्मिक परिवेश में सिर्फ गुलामी की सीढ़ियां होंगी। ये उसे अतीत के ऐसे अंधेरे का हिस्सा बना सकती हैं, जहां उत्पीड़न और अपमान के सिवाय और कुछ नहीं है। यह सिर्फ बेटियों को नहीं, पिताओं को भी सोचना है। दरअसल अपनी बेटी के मामले में अब लाखों पिता पितृसत्तात्मक नहीं हैं।

निश्चय ही स्त्री की सामाजिक स्थिति को समझने के लिए ‘पितृसत्ता’ की वैचारिक श्रेणी का विस्तार करना होगा। स्त्री की मुक्ति का प्रश्न कई अन्य बड़े प्रश्नों से जुड़ा है। अब प्रांतीय सामुदायिक अस्मिता, राष्ट्रवाद, मुक्त बाजार व्यवस्था और नई राजनीतिक प्रवृत्तियों से स्त्री के संबंधों को समझे बिना पितृसत्ता का वास्तविक स्वरूप उजागर नहीं हो सकता। यदि कुछ दशकों

से जेंडर-मुद्दे का कूपमंडूकीकरण हुआ है तो इसकी कई परतें हैं। पुरुष-सत्ता उनमें सिर्फ एक परत है। मुश्किल यह है कि पिछले स्त्री विमर्शों में निशाने पर सिर्फ एक सीमित पुरुष-सत्ता रही है। इसके अलावा, स्त्री विमर्श एकेडेमिक-साहित्यिक दायरों तक बंधा रहा है। स्त्रीवाद ने अपनी एक बड़ी भूमिका निभाने के बावजूद निश्चय ही स्त्री पर-अधीनता की जो अन्य परतें हैं, उनकी उपेक्षा की है।

नई स्थितियों में स्त्री की पहचान और स्वतंत्रता पर नए सिरे से चर्चा जरूरी है, क्योंकि नए सवालों और चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यह एक बड़ा सवाल है कि पिछले 200 सालों से जिन बुराइयों से लड़ाइयां चलीं, वे क्यों लौट आईं, इतनी ताकतवर बनकर? स्त्रीवाद की माडर्न छतरी फट गई है। निःसंदेह अब धर्म, जातिवाद, राष्ट्रवाद और बाजारवाद के मुद्दों पर जागरूक हुए बिना पितृसत्ता के विस्तार को समझा नहीं जा सकता।

स्त्री की समस्या इसलिए भी ज्यादा जटिल है कि दलितों, आदिवासियों या विभिन्न जातीयताओं (मराठी, बंगाली, तमिल) की तरह वह एक बिलकुल अलग ‘कैटेगरी’ या ‘कम्युनिटी’ नहीं है। उसका अलग ‘गांव’ नहीं हो सकता। स्त्री अपने धर्म, अपनी जाति, अपने प्रांतीय समुदाय और अपने परिवार में होती है। वह जहां भी जाए, उसे अपने परिवार में लौटना होता है!

हम स्पष्ट तौर पर देखते हैं कि हिंदू धर्मध्वजवाहक हो या



मुल्ला-मौलवी, वे स्त्री-पुरुष बराबरी के सख्त विरोधी हैं। वे मानते हैं कि स्त्री-पुरुष की क्षमताएं और जिम्मेदारियां भिन्न हैं। यदि खुद धर्म पितृसत्तात्मक प्रकृति का हो तो खड़िवादी धर्मरक्षक उदार कैसे हो सकते हैं। दिल्ली के ‘निर्भया’ मामले के समय एक धर्मपुरुष का बयान आया था- लड़कियों के इन दिनों ग्रह-नक्षत्र खराब हैं। निर्भया को लड़कों को भाई कह कर उनके सामने रोना-गिड़गिड़ाना चाहिए था और भगवान को बुलाना चाहिए था। स्त्री के संबंध में ऐसे ही दकियानूसी बयान इधर रोज सुनने को मिलते हैं। उनमें कई बार हिंसा भरी होती है।

दरअसल भारत जैसे देश में स्त्री के संबंध में संवेदनशील और बुद्धिपरक सोच कई अवरोधों से घिरी हुई है। वैश्वीकरण के इन चालीस सालों में भौतिक समृद्धि चाहे जितनी आई हो, बौद्धिक-नैतिक विकास नहीं हुआ। समाज में कूपमंडूकता बढ़ी है। इसका एक नमूना यह है कि स्त्री जब यौन-हिंसा का शिकार होती है तो उसकी जाति, धर्म, जातीयता-पुराजातीयता ही सबसे पहले उद्घाटित की जाती है। ऐसी शिनाख्त खुद में पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त होती है। इसके अलावा, घरेलू हिंसा की व्यापकता भी कम नहीं है।

धर्म के साथ बाजार की पितृसत्तात्मकता को भी समझना जरूरी है, क्योंकि दोनों ही पुरुष को ‘हिंसक’ और स्त्री को ‘शिकार’ बनाते हैं। स्त्री मिनी स्कर्ट पहने या बुर्का- दोनों चीजें ही वस्तुतः पुरुष-सत्ता द्वारा निर्धारित होती हैं। बाजार संस्कृति में स्त्री उससे भिन्न कुछ नहीं बन रही है, जो पुरुष देखना



चाहता है। स्त्री की रुचियों पर बाजार के रास्ते से पुरुष सत्ता का ही कब्जा है।

विश्व बाजार की नजर में स्त्री की सबसे बड़ी संपत्ति

उसकी देह है। पुरुष की देह उस तरह से संपत्ति नहीं है! क्या आश्चर्य यदि धर्म स्त्री को ‘पराया धन’ समझने की जमीन देता है, तो बाजार भी उसे ‘देह’ ही समझता है। इस दौर में बाजार-युद्ध का एक बड़ा क्षेत्र स्त्री देह है। आइटम सांग, फैशन, विज्ञापन आदि पुरुष-सोच के एकतरफा स्त्री-बिंब बनाते हैं और स्त्री सोचती है कि वह स्वतंत्र हो रही है! अभी भी राष्ट्र हो, धर्म हो, जाति हो या बाजार हो, दुनिया पुरुष की है।



एक बैंक के विज्ञापन में पुरुष स्त्री को सिंदूर लगाता है और एक शब्द उभरता है— सुरक्षा! अर्थात् यह बैंक पुरुष की तरह ही एक सुरक्षा है। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर एक बड़े ज्वेलरी शॉप का एक विज्ञापन है— गहना सौंदर्य ही नहीं स्वतंत्रता का चिह्न है! इधर मन की जगह देह का सुंदर दिखना ही चरम मूल्य बना दिया गया। ‘फेयर एंड लवली’ का आकर्षण श्रमिक बस्तियों तक है।

दरअसल बाजारवाद भी आम लोगों के दिमाग में धर्म की तरह पुरानी धारणाओं को ही मजबूत बनाता है। इन घटनाओं से इधर स्त्री चेतना के सामने चुनौतियां बढ़ी हैं। इसलिए स्त्री-चेतना को अब स्त्रीवाद के पार जाकर देखने की जरूरत हो सकती है। स्त्री को ही सोचना है कि वह भुलावा से बाहर कैसे निकले, अन्यथा वह धर्मक्षेत्र-युद्धक्षेत्र बनी ही हुई है।

शंभुनाथ



ज्योति चावला

चर्चित लेखिका। दो कविता संग्रह-
‘माँ का जवान चेहरा’, ‘जैसे कोई
उदास लौट जाए दरवाजे से’
और एक कहानी संग्रह ‘अंधेरे की
कोई शक्ति नहीं होती’। इंदिरा
गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
के स्कूल ऑफ ट्रांसलेशन में
सहायक प्रोफेसर।

मेट्रो और वह औरत

मेट्रो में बैठी हूँ बमुश्किल अर्जित सीट पर
ठसाठस भरी है मेट्रो एक छोर से दूसरे छोर तक
देहों से फूटती है गंध
दिनभर की जद्दोजहद के बाद घर लौट जाने के
उत्साह की
अपनी बेहद सभ्य और गुनगुनी आवाज में
घोषणाएँ पढ़ रहे हैं एक स्त्री और पुरुष
अगले गंतव्य की
ठीक मेरे सामने की सीट पर बैठी एक औरत
रोक लेती है अपने चेहरे पर मेरी आंखें
पल भर के लिए
चुप बैठी वह औरत जैसे अनजान है पूरे दृश्य से
और आंखें हैं कि बदस्तूर बह रही हैं
आंसू बहते हैं, टपकते हैं और धीमे से
सरक जाते हैं उसके गालों पर
चुपचाप बिना कोई आवाज किए
ऐसे जैसे खलल न पड़े स्त्री के एकांत में
मैं अनदेखा करने लगती हूँ
भीड़ में अकेली उस स्त्री को



ताकि मिल सके उसका एकांत उसे
और बह जाएँ वे सारे आंसू जिन्होंने
बढ़ा दिया है उसकी देह में नमक का अनुपात
मैं नहीं जानती वह स्त्री कहाँ से आई है
नहीं जानती यह भी कि जाना कहाँ है उसे
यूँ भी तो चलती ही चली जा रही हैं स्त्रियाँ
किसी अंतहीन यात्रा में बरसों से
बिना कोई आहट दर्ज किए

इस पल मैं हूँ अपने बिस्तर पर
और सर्द रात के डेढ़ बज रहे हैं
वह औरत रात के गहरे अंधेरे को भेदकर
चली आई है मेरे कमरे तक
वह रोए जा रही है न जाने कितनी सदियों से
और आंसू हैं कि कम ही नहीं पड़ते

मुझे याद आने लगती हैं समुद्र की वे बेचैन लहरें
जो किनारों पर अपना सिर पटक-पटक कर
लौट जाती हैं वापस
मुझे समुद्र और उस औरत में
कोई गहरा रिश्ता-सा दिखने लगता है ।

उनके पैरों की आवाज से कांप रही है पृथ्वी

जिस समय तुम जिक्र कर रहे हो
दुनिया के सबसे स्वादिष्ट व्यंजन का
वे लोग रोटी की तलाश में चल दिए हैं
तपती सड़कों पर
अपने अदृश्य घरों की ओर
जिस समय सुरक्षा के नाम पर तुम
बंद हो अपने वातानुकूलित घरों में
वे सड़कों के किनारे अपने हाथों की ओट लिए
ताक रहे हैं अंतहीन सड़क को
जिस समय तुम तैयार कर रहे हो अपनी देह को
किसी अदृश्य ताकत से लड़ने के लिए
वे सड़क पर नोच कर खा रहे हैं
मरे हुए जानवरों का मांस

जिस समय तुम बहस रहे हो
छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए
ठीक उसी समय वे लड़ रहे हैं
जिंदगी और मौत की लड़ाई



जिस समय तुम्हारे बच्चे
 मशीनों से सीख रहे हैं इंसान होने का पाठ
 और तैयार हो रहे हैं किसी अंधी होड़ के लिए
 वे जूझ रहे हैं अपने बच्चों के हिस्से की छांव के लिए
 जहाँ मीलों लंबी यात्रा के बीच तलाशा जा सके पड़ाव
 ताकि बहला सकें वे अपने मासूम बच्चों को
 ये सारे दृश्य एक साथ चलते हैं मेरे मस्तिष्क में
 और सब कुछ बेमानी लगने लगता है
 यह सुरक्षा, यह घर और पेड़ के हरे पत्ते
 अपनी बेबसी के पलों में
 फेसबुक के पेज को स्क्रॉल करती हूँ मैं अनमनी-सी
 और सामने खड़ा हो जाता है
 वह मासूम बच्चा अपनी भूख के साथ
 उसकी आंखों में है
 कभी न खत्म होने वाले सफर की दहशत
 स्क्रॉल करती हूँ फेसबुक, देखती हूँ टेलीविजन
 देखती हूँ आसमान की ओर
 हर जगह भूखी आंखें मेरा पीछा करती हैं
 जीवन के सारे सुखों और सुंदरताओं के सामने
 खड़े हो जाते हैं तलुवे पर उग आए फफोले
 मैं बंद करती हूँ सूचनाओं के सारे दरवाजे
 बंद करती हूँ अपनी आंखें
 बाहर अंधेरा छा जाता है
 गोद में अपने नवजात बच्चे को थामे वह स्त्री
 पैर घसीटती भर रही है छोटे-छोटे डग
 और उसके पैरों की आवाज़ से
 बार-बार कांप रही है पृथ्वी ।



केवल एक रंग

यह समय एक दृश्य है
जिसे बच्चों के मासूम असहाय चेहरों ने भर दिया है
यह समय एक दृश्य है
जिसमें टंकी हैं न जाने कितनी जोड़ी बेबस आंखें
हमारी ओर ताकती हुईं
जिनमें अब ठीक से कोई सवाल भी नहीं है
यह समय एक कैनवास है
जिसमें न जाने कितने दृश्यों के बावजूद
दिखाई देता है केवल एक रंग
रंगों की दुनिया में उभरे इस नए रंग ने धेर ली है
सारे रंगों की जगह और वह अराजक हो गया है
मैं पूछती हूँ कलाकारों से, चित्रकारों से
क्या नाम देंगे उस रंग को



जिसमें मज़लूम लोगों की बेबसी हो
बच्चों का रुदन हो
सड़क पर जन्म देती
और अगले ही पल उसे बांहों में समेटे
चल देती उस मां की बेबसी को
किस रंग से उकेरा जा सकता है भला
कैसे उकेरा जा सकता है उस चित्र को
जिसमें एक दस महीने का मासूम बच्चा
अपनी माँ की लाश को झिंझोड़ रहा है
कैसे बनेगा वह रंग

जिससे एक साथ चरम अद्वहास
और चीत्कार दोनों को उकेरा जा सके
यह एक बेहद अराजक दृश्य है
जिसे उकेरा नहीं जा सकता शब्दों में भी

भाषाएँ सिसक रही हैं अपनी लाचारी पर
 अपनी निर्मिति की पूरी प्रक्रिया में इतराती रही हैं वे
 कि उनके पास है एक गौरवशाली इतिहास
 मनुष्य को शब्दों में उकेरने का
 जिस समय असहाय होकर रह जाएँ
 रंग, कलाएँ और भाषाएँ
 उसको लोकतंत्र तो नहीं कहा जा सकता ।

मेरी दुनिया के बच्चे

जिस समय अपने बच्चे को बगल में सुलाए हूँ मैं
 और मुस्कुरा रहा है वह सपनों की खूबसूरत दुनिया में
 ठीक उसी वक्त सहमे हुए हैं बच्चे
 अपनी मां के सीने में धंसा कर सिर
 गली में गूंज रहे जूतों की आवाज से

जिस समय मैं सुना रही होती हूँ कहानियाँ अपने बच्चों को
 और भौंचक आंखों से वे झूब रहे होते हैं
 अपनी मासूमियत के समंदर में
 उस समय वे बच्चे वक्त से पहले हो रहे होते हैं बड़े

जिस समय मैं डांट रही होती हूँ उन्हें
 तेज धूप या बारिश में खेलने से
 उन्हें डपट रही होती हूँ मन भर शारात करने से
 ठीक उसी समय दूर बैठे वे बच्चे
 अपनी खिड़कियों पर गिरे पर्दों से
 झांक रही ज़िर्री भर रोशनी से
 निहार रहे होते हैं न जाने कितनी उम्मीदों से
 अपने बच्चों को जब हम सिखा रहे होते हैं
 गलत और सही का ठीक-ठीक फर्क



वे बच्चे गलत को स्वीकार कर लेने के लिए
 किए जा रहे होते हैं प्रशिक्षित
 यह कैसा न्याय है कि
 धरती के एक कोने पर बसने वाले ये बच्चे
 कितने अलग हैं हमारी नियमावली में
 बारिश के बाद खिलती धूप में
 इंद्रधनुष पकड़ने के लिए दौड़ते बच्चों को नहीं पता
 कि इसी धरती पर ऐसे बच्चे भी हैं जिन्होंने
 ठीक से देखा तक नहीं सात रंगों को खुली आंखों से
 ये बच्चे गहरी नींद में खेल रहे होते हैं पकड़म-पकड़ाई
 और घेर लिए जाते हैं बंदूकों से
 डर कर जब चिल्ला उठते हैं वे नींद से
 इनकी माँ दबा देती है मुँह कि
 आवाज बाहर न जाने पाए झिरियों से भी
 नहीं तो रात के सन्नाटे को चीरकर आ रही
 जूतों की आवाज घर के दरवाजे तक आ पंहुचेगी
 ठकठका दिए जाएंगे दरवाजे बंदूक के हत्थों से
 उठ बैठेंगे वे सोए बच्चे कच्ची नींद से
 जो नींद में ही सही
 थोड़ी बेहतर दुनिया का ख्वाब देख रहे हैं ।



स्कूल ऑफ ट्रांसलेशन स्टडीज एंड ट्रेनिंग
 15 सी, न्यू एकेडमिक बिल्डिंग
 इग्नू, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली-110068

jtchawla@gmail.com



स्वाति मेलकानी

युवा कवयित्री। कविता संग्रह
‘जब मैं जिंदा होती हूँ’।

पिथौरागढ़ किताब आंदोलन

क्या फर्क पड़ता है

किताबों के होने या न होने से
जिंदगी की जखरतों की फेहरिस्त में
किताबें न तो हवा हैं न पानी

किताबों को

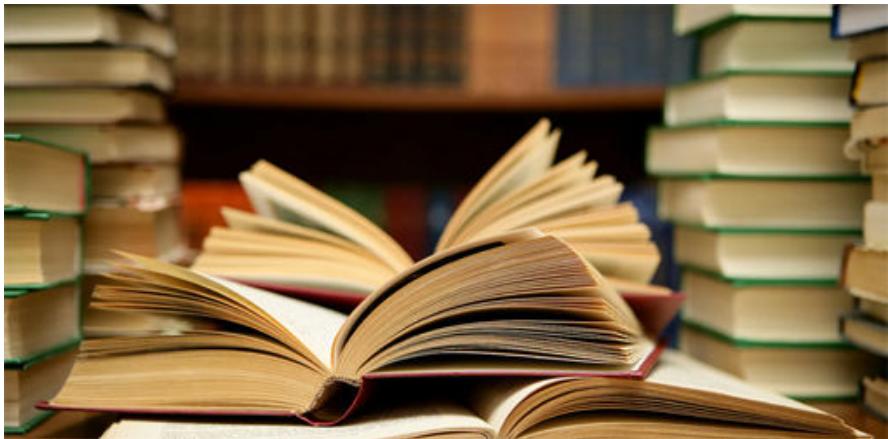
जिंदगी से बेदखल किए जमाने गुजर चुके हैं
मोबाइल से बचा वह समय
जिसे हम जीवन कहते हैं
अब किताबों की हसरत नहीं पालता

जिस दौर में

बोतलों में बंद होकर
पानी और शराब दोनों बराबर बिकते हों
किताबों की मिट्टी में कुएँ खोदने
और किताबों की सोहबत के नशे में रहने की
मोहल्लत किसके पास है

मेरे नौजवान दोस्तो! किताबों के न होने से
उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता
जैसे सूरज को नहीं पड़ता फर्क
जंगल में आग लगने से
या पानी के जहर बनने से

जमीन के गुणा-भाग
जमीनी हवाओं में कैद हैं
आसमान के कद तक



उनके उड़ने की सख्त मनाही है

किताबों के न होने से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता
जिन्हें नापसंद है
खुली किताब के फड़फड़ाते पन्नों से उठता
जीवन का मधुरतम गीत
और जो इंसान के भेड़िया बन जाने को
इस सदी की सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं।

दो देहों के अलावा

हम हो सकते थे पेड़ और पहाड़
एक दूसरे में समाई हमारी जड़ें
हमसे भी अधिक आलिंगनबद्ध रहतीं
हम हो सकते थे नदी और झरना
जहाँ एक का अंत दूसरे की शुरुआत बनता
रात और तारे
जहाँ एक का अंधकार
दूसरे के प्रकाश का द्वार खोलता
हम हो सकते थे बादल और बारिश
जहाँ एक के पिघलने से दूसरा बह निकलता
हम सूर्य और दिन भी हो सकते थे
जहाँ एक के उगने से दूसरा स्वयं आ जाता



या समुद्र और धरती
जहाँ एक के ऊपर
दूसरे के लहराने की अपार संभावनाएँ होती
हम हो सकते थे बसंत और फूल
जहाँ एक के खिलने से
दूसरे के भी आने का अहसास होता
हम हो सकते थे हवा और सुगंध
जहाँ एक चलने से दूसरा भी सफर में होता
क्या नहीं हो सकते थे हम
सिर्फ दो देह भर होने के अलावा
जिनमें एक स्त्री और दूसरी पुरुष की थी!

असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, स्वामी विवेकानन्द राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय लोहाघाट, जिला—चंपावत, उत्तराखण्ड मो.
9411538852 email : swati.melkani@gmail.com



मालिनी गौतम

अद्यतन कविता संग्रह
'चिल्लर सरीखे दिन'।
महीसागर (गुजरात) में
सहायक प्रोफेसर।

अकेलापन इतना उपजाऊ पहले न था

भीड़ में भी
अकेले रहने वाले आदमी को
जब सच में अकेला रहना पड़ा
तब याद आए
बिसरे हुए स्वजन
चाचा-ताऊ, भाई-भतीजे
बहने-भाभियाँ
पुरानी डायरियों में से
ढूँढ-ढूँढ कर निकल आए
बचपन के यार-दोस्त
संगी-साथियों के फोन नंबर

सबसे खैर-खबर पूछते वक्त
हँस-हँसकर बतियाते वक्त
पुरानी यादों को टटोलते-टटोलते
ठहाके लगाते वक्त
न जाने कितनी बार
नेह छलक-छलक आया आंखों से
नम हुआ मन
महामारी के वक्त भी
ऊसर धरती पर
प्रेम के गहरे दबे बीज अंखुआए

यूँ अकेलेपन में
अक्सर उलीचे जाते रहे हैं
अतीत के अंधेरे
इस बार अकेलापन देता रहा दस्तक

परिचित-अपरिचित के बंद दरवाजे पर

बरसों से जिस पड़ोसी का
नाम तक न जाना कभी
अल्लसुबह दूध लेते वक्त
उसी की एक हल्की मुस्कान
दे गई मन को
थोड़ा और हरा रंग

बरसों पहले जड़ों से उखड़े कुछ रिश्ते
घबरा कर फिर आ खड़े हुए द्वार पर
देखते ही देखते पेड़
लद गए प्रेम-पगे रसीले फलों से
अकेलेपन में खुद से जूझते
खुद को ढूँढते
खुद से लड़ते
अंतर्मन की कंदराओं से निकलीं
न जाने कितनी नदियाँ
कितने झरने
और कितने ही सोते फूट पड़े
अकेलापन
इतना उपजाऊ पहले न था ।

574, मंगल ज्योत सोसाइटी, संतरामपुर-389260

ગुજરात મો. 9427078711





पद्मजा शर्मा

लंबे समय से लेखन।
साहित्यिक हस्तियों के
साक्षात्कार की किताब
'ख-ब-ख' सहित 21

किताबें प्रकाशित।

झूबना

स्त्री प्रेम के समंदर में
पैठती चली जाती है
गहरे गहरे और गहरे
उसे तैरना नहीं
झूबना आता है।

बिछड़ना

बरसों से कोई पुकार
पुकार रही है अनवरत मुझको
वह पुकार पुकारती रहेगी
बरसों तक मुझको
पर मैं नहीं मिलूँगी
वह पुकार मेरी ही है
जो मुझसे बिछड़ गई थी बरसों पहले
जिस तरह कोई सूखी पत्ती आंधियों में
बिछड़ जाती है अपनी डाल से।



15 बी, पंचवटी कॉलोनी, सेनापति भवन के पास,

जोधपुर-342011 मो.9414721619

email : padmasharma@gmail.com



वंदना बाजपेयी

कवयित्री और कथाकार।
कहानी संग्रह 'विसर्जन'।

हम सब हत्यारे हैं

सोशल मीडिया के दौर में
क्या आप सोचते हैं
जब आप अपनी नई कार की फोटो डालते हैं
अपनी फ्रेंड लिस्ट में
जो साइकिल से चलता है उस पर क्या बीतती है
क्या आप तब सोचते हैं
जब आप अपनी फोटो डालते हैं नियाग्रा फाल के सामने
वेनिस की नहरों की
या पीजा की झुकी हुई मीनार की
उस पर क्या बीतती है
जो पिछले बीस साल से दिल्ली में रहने के बावजूद
नहीं देख पाया है लाल किला
उन्हें रोटी-पानी से ही फुर्सत नहीं है
बड़ा परिवार है, नहीं ले जा सकते सबको
क्या आप तब सोचते हैं
जब आप फाइव स्टार होटलों की
वाइन ग्लास के टकराने की फोटो डालते हैं
जहाँ की एक कप चाय किसी परिवार के
एक दिन के पूरे खाने से महंगी है
जरा अपनी टाइम लाइन चेक करिएगा।

आप नहीं सोचते
लेकिन वह सोचता है
वह भी यहीं सब चाहता है
जो अपनी उम्मीदों का भारी बस्ता
अपने स्कूल जाते बच्चे के कंधे पर चढ़ा देता है
वह जवाब ढूँढता है तमाम तानों का
अपने बच्चे की मार्कशीट में

वह जवाब ढूँढता है बॉस की दादागिरी का
 अपने बच्चे के चयन में
 कभी गौर से सुनिएगा इन घरों की दीवारों के शब्द
 देखो भले ही नहीं हुआ मेरा प्रमोशन
 मेरे बेटे का चयन
 बॉस के बेटे से अच्छे कॉलेज में हुआ है



उसका कुचला हुआ सम्मान उसे पूरा करना है
 बेटे के माध्यम से
 आप तो अपनी खुशी साझा कर रहे थे
 आपकी यह पैतृक विरासत है
 या पाया होगा आपने उसे घनघोर परिश्रम से
 फिर आपत्ति क्यों जनाब
 वे भी खुशी साझा कर रहे हैं
 जो अपने बच्चों की मार्कशीट
 अपनी दीवार पर चस्पा कर रहे हैं
 वह सब आपकी उपलब्धि थी
 यह उनकी है
 पूरा समाज है बच्चों के विरुद्ध
 ठहरिए, सोचिए
 इस आग के लिए पहली तीली कहाँ से फेंकी गई
 लपटें खुद नहीं उठर्ती
 अगर सोशल मीडिया के दौर में दिखाना जरूरी है वह सब
 तो क्या फर्क पड़ता है
 हमने नाक इधर से पकड़ी या उधर से
 देखिएगा अपनी टाइम लाइन फिर से
 इस खूबसूरत दुनिया को
 कामनाओं के कुरुक्षेत्र में धकेलने के लिए
 हम सब कहाँ दोषी हैं
 कहाँ हत्यारे हैं।

बी -125, प्रथम तल, निर्माण विहार, दिल्ली -110092

फोन -9818350904. ईमेल : vandanabajpai5@gmail.com



चोरी

सोनू चौधरी

कवि के अलावा
सूचना, शिक्षा एवं
संचार विशेषज्ञ।

म्यूजियम, बैंक या किसी शानदार पार्टी से
कड़ी सुरक्षा के बीच हीरा चोरी की रोमांचक खबर
हर कोई सुनता है ठिठक कर
हर कालखंड में धूम मची रहती ऐसी फिल्मों की
मैं चाहती हूँ
दुनिया की तमाम लाइब्रेरियों से चोरी हों किताबें
गली के शोहदों के कारण नहीं जा पा रही हैं लाइब्रेरी
मंजुला, नीमा, अरुणिमा किसी भी शाम
चोरी की गई कुछ किताबें
भिजवा दी जाएँ उनके घर
ताकि उनका घर बन जाए दुनिया
कुछ किताबें अनाथालयों, वृद्धाश्रमों की चौखट पर भी
छोड़ दी जाएँ चुपचाप
ताकि वहाँ बीसियों बार पढ़ी गई
जर्जर किताबें मुक्ति पा सकें
कुछ किताबें भिजवा दी जाएँ जेल के भीतर
ताकि सजायापता कैदी सोच सकें
इतनी भी बुरी नहीं है यह दुनिया
कुछ किताबें गांवों की
स्कूल लाइब्रेरियों में भिजवाई जाएँ
आप जानते ही हैं



उन्हें जगह भी आवंटित है और रैक भी
 कुछ किताबों को पहाड़, खेत में भी छितरा देना चाहिए
 गड़रिये के किस्से खत्म होने को हैं
 और खेतों की मुंडेर पर बैठे बच्चों की टोली को चाहिए
 उनके सपनों के लिए कोई नई कहानी
 कुछ किताबें उस दर पर क्यों न पहुंचें
 जहाँ आते हैं सिर्फ रूप के ग्राहक
 कुछ किताबों को ठेले पर
 गलियों में ले जाकर देनी चाहिए हाँक
 ताकि लोग जान-मान सकें
 किताब को रोजमर्रा की सबसे जखरी चीज
 ये हीरे जैसी किताबें कब तक प्रतीक्षा करेंगी
 लाइब्रेरियों में हमारी
 इनके पास पंख हैं
 इन्हें उड़ कर जाना चाहिए हर जगह ।

यशस्वी भव, सी-231, सिद्धार्थ नगर, जयपुर-302017
 मो. 9413677414





अनामिका अनु

युवा कवयित्री | लगातार
लेखन।

वे लिखते थे

मैं क्या वह देख लूँगी सपनों में
जो यथार्थ से भिन्न होगा
क्या आँखें देख लेंगी वह यथार्थ
जो सपनों से बहुत भिन्न था
वर्जीनिया उल्फ की रातों में
स्वप्न थे नींद नहीं
उसके जीवन में प्रेम था
कविता के लिए समय
और आने वाले समय के लिए कविता थी
वह नहीं करती आत्महत्या
अगर कविता बचा सकती
कविता मरते कवि का हाथ नहीं पकड़ती
वह मौन रहती है
क्योंकि कविता के लिए
मौन का अर्थ है मृत्यु का आमंत्रण
हेमिंग्वे के भीतर युद्ध मचा रहता था
इसलिए उसके पात्र पुरुषार्थी थे
उसके गुणसूत्रों में बंदूक की गोलियों का
थरथराता डर रोप दिया गया था
इसी डर ने एक दिन
धराशायी कर दिया
उनकी कहानियों के सभी योद्धाओं को
एक बार वह चूका और

अपनी कलात्मक ऊँचाई से फिसलता
गिर गया मौत की खाई में
एक बूढ़ा मछुआरा और विशाल समुद्र
यह सब देख रहा था

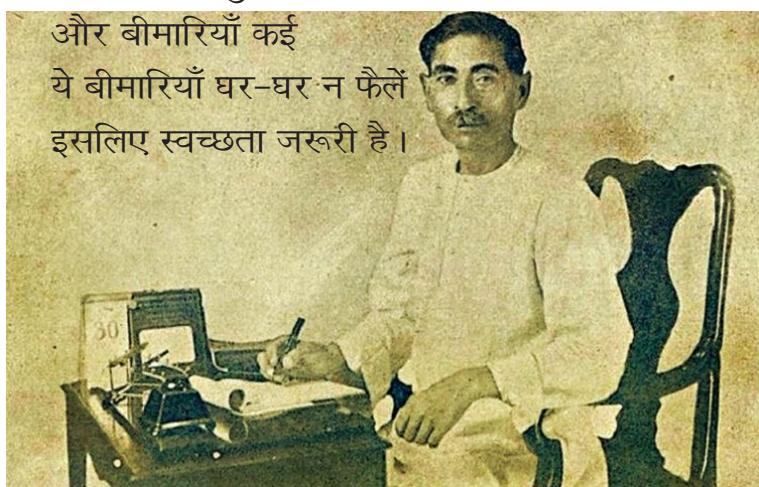
अमृता प्रीतम स्वप्न, प्रेम और शब्द
की दुनिया से इतर
एक जागता बिखरा ऐसा देश समेटी थी
खुद के भीतर
जो चाय की चुस्कियों, कलम, किताबों में
चहलकदमियाँ करता रहता था
वह चली गई

पर उनका देश आज भी जाग रहा है
उनकी किताबों के पन्नों में फड़फड़ा रहा है
प्रेमचंद गरीब नहीं थे
गोदान करने और लिखनेवाला आदमी
गरीब नहीं होते
दोनों के पास धन होता है
धन की प्रकृति भिन्न हो सकती है

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कई बार झाडू बनाकर
विद्यालय प्रांगण को बुहारा था
वे जानते थे

यहाँ कचरा बहुत है

और बीमारियाँ कई
ये बीमारियाँ घर-घर न फैलें
इसलिए स्वच्छता जरूरी है।





वह कोच लड़की

दार्जिलिंग की पहाड़ी में घूमते
एक दिन लाल फीते बाँधी
एक कोच लड़की ने
बताया था
भात से अधिक कुछ भी नहीं
चाहिए पेट भरने को
बाकी की चीजें आडंबर हैं
दूसरे खाद्य पदार्थों का नाम वह सिर्फ
इसलिए याद रखती है
क्योंकि वे बातें किताबों में लिखी हैं
परीक्षा में उन पर पूछे प्रश्नों का उत्तर देना
आगे बढ़ने के लिए जरूरी है
वह चाहती है पढ़कर कलेक्टर बनना
लेकिन तब भी
वह पैसे से सिर्फ चावल ही खरीदेगी
बाकी बचे पैसे से
वह पढ़एगी सब लड़कियों को
ताकि वे सब भी अपनी कमाई से
खरीद सकें चावल
और बना सकें अपना भात ।

हाउस नं. 31, श्रीनगर, कवु लेन, वल्लाकडवु, त्रिवेंद्रम, केरल-695008
मो.8075845170 Email : anamikabiology248@gmail.com



मनीषा झा

युवा कवयित्री और
शिक्षाविद। कविता
संग्रह- ‘शब्दों की
दुनिया’, ‘कंचनजंघा
का समय’। आलोचना
की चार किताबें।
उत्तर बंगाल
विश्वविद्यालय के हिंदी
विभाग में प्रोफेसर।

सुख की तारीख

सुख लेना हो तो लग जाओ
कतार में जल्दी-जल्दी
वह शामिल हो गई अपना फटा हुआ दुख लेकर
कतार में
जहाँ पहले से खड़ी थीं स्त्रियाँ
अपना-अपना दुख लेकर
लिख लो कागज की पर्ची में
सब अपना-अपना दुख
और सौंप दो हमें-
एक-एक चिरकुट थमाते हुए उन्होंने कहा था
लिखने लगी हर स्त्री अपना-अपना दुख
वे एक-एक कर लेते जा रहे थे चिरकुट
कहते जा रहे थे रुके रहना तुम लोग
बताया जाएगा सबसे अंत में
सुख के आने की तारीख
वे पर्चा थमा देने के बाद जमा होती जार्ती
एक बरगद की छाँव में
इतने में भर गया वह मंच दुख के चिरकुटों से
वे खोल-खोल कर तहाने लगे सब कागज
लिखा था किसी ने
बस के इंतजार में खड़ी थी जो
मनचले द्वारा फट्टी सहने का अपमान
कस्बाई युवती का यह रोजमर्रा का दुख था

किसी ने लिखी थी
कामुक नजरों से हिंसा की बात
जवान होती स्त्री
बड़े संकोच से लिख पाई थी यह दुख

एक दुख था बुरी तरह पिटने का
पियककड़ पति द्वारा
लिखा था विस्तार से कि
घर-घर जाकर चौका-बर्तन

मेहनत की कमाई से करती है परिवार का पोषण
मगर एक चुटकी सिंदूर के लालच में
जमा हो गए थे तरह-तरह के दुख

एक दुख उपजा था
घर से बाहर कर देने की धमकी की शक्ति में
एक दुख था पेट भर खाने के लिए
कुछ भी कर जाने की विवशता का

एक दुख बलात्कार के कारण सिसक रहा था
एक दुख दंगों की दहशत से भरा था
एक दुख पैदा हुआ था
दो स्त्रियों को आपस में लड़वा देने से
इतने तरह के दुखों को देखकर
वे चकरा गए

जिन्हें सह रही थीं स्त्रियाँ सदियों से
स्त्रियों की भीड़ को संबोधित कर उन्होंने कहा
ऐसे दुख लिखने की जगह है यह?
क्या लिखा है तुम लोगों ने
भला यह भी कोई दुख है?
सब जाओ अपने-अपने रास्ते
यहाँ से नहीं इश्यू होगी
अब सुख की कोई तारीख ।



यहाँ से देखो

यहीं रहो न
क्या जखरत है चाँद पर जाने की
यहाँ से देखो, मेरे पास आकर
कितना सुंदर दिखता है चाँद

मैंने सुना है उस आदमी के बारे में
जो बार-बार पहुंच जाता था चाँद पर
वह जीतना चाहता था चाँद
इस नशा में वह
दिखने लगा था एक खूंखार एलियन

कुछ चीजें अच्छी लगती हैं
अपने ही स्वभाव में
जैसे कि पृथ्वी
जैसे कि सूरज
जैसे कि तारे
जैसे नक्षत्र सारे

कुछ रहस्य रहस्य ही रहते हैं
तो बनी रहती है उत्सुकता जीने में
करो हिफाजत एक -एक कर उनकी
बात मानो
सुनो
चाँद को चाँद ही रहने दो
कितना सुंदर दिखता है चाँद
यहाँ से देखो, मेरे पास आकर!



हिंदी विभाग, उत्तर बंग विश्वविद्यालय, सिलीगुड़ी,
दार्जिलिंग-734013 मो.9434462850



नीतू सिंह भदौरिया

युवा कवयित्री और शिक्षिका।

तीसरा चेहरा

आकार लेते
अवरोधों के बावजूद
एक दस्तखत
खरोंचों के बीच
एक यथार्थ-
अधिकारों का खुलता
नया गवाक्ष
झूठी सहानुभूति से दूर
तलाशने लगे हैं तीसरे चेहरे
अपना वजूद
जिन्हें सारस मानकर
परोसी जाती रही है थाल में
सहानुभूति
खीर की तरह

बुद्धि का बचा-खुचा टुकड़ा
अवैचारिक गर्त में फेंककर
ठहाके लगाता है उन पर
कई बार बुद्धिजीवी
जो सर्वाधिक उपेक्षित
सम्मान की दुनिया से बहिष्कृत
जिनके मत्थे

मढ़ दिए गए हैं कई नाम
उनके अधूरेपन को उद्घाटित करते हुए
अपनी बदरंगता ढंके
मेकअप की मोटी चादर ओढ़े
दिख जाते हैं वे
मुहल्ले के किसी भी घर में अचानक
डामरी बजाते हुए



तालियों से अपनी
उपस्थिति दर्ज कराते हुए
विवाहोत्स्व जन्मोत्सव पर
अपने हिस्से की बधाई
निकलवाते हुए
दिख जाते हैं वे
सड़कों पर, बसों में, ट्रेनों में
तालियों के बीच
हाथ फैलाते हुए
उपेक्षित दृष्टियों के बीच
मुसकुराते हुए
समाज की करुणा
उद्भेदित नहीं होती उनके लिए
शंकाओं और जुगुप्सा की
झालर से सजी
लोगों की शिलीभूत आंखें
देख नहीं पातीं उनकी छटपटाहट
उनके सीमित शब्दों के बीच
नहीं टटोल पाते हम
उनसे संवाद की अपनी जड़ें
नहीं हो पाते हम मुक्त
अपने पूर्वाग्रह से जिन्हें
अपनी अस्मिता
अपनी आवाज
बन खुद उभर आए हैं
अधिकारों के पन्नों पर अब
बनाने लगे हैं
अपनी नई कहावतों की जमीन
करने लगे हैं
अपने हस्ताक्षर जो
अब तक खरोंचों के बीच दबे थे।

सौंप दिया तुम्हें

सौंप दिया तुम्हें
वह अपना क्षण
जब एक नन्ही बूँद
सुनहरी धूप के बीच झपाझप बारिश में
पेड़ की फुनगी से टकराती हुई
हरी-पीली पत्तियों से गुजरती हुई
मुझे छू गई थी कभी
सौंप दी तुम्हें यादों की मटमैली गठरी
जिसे बड़े सलीके से बाँधा था
कभी न खोलने के लिए



सौंप दिया तुम्हें अपने जीवन का कैलेंडर
जिसमें मेरी सारी संवेदना
पीड़ा, आंसू, प्रेम सब अंकित हैं
सौंप दी तुम्हें अपनी लेखनी
जो कुदाल बन
मेरे अंदर की मिट्टी को उकेरती है
प्रतिक्षण

जानती हूँ शहरों में
आज कुछ भी सौंपना आसान नहीं होता
इतिहास की गली से निकलकर
वर्तमान के नुककड़ पर रुका मेरा हर पल
सबल साक्षी है कि सौंप दिया तुम्हें
वह हर शब्द
जो केवल और केवल
मेरा था ।

फ्लैट नं. 3 ए, 260 एम.एन.के.रोड,
कोलकाता-700036 मो. 9163297846



अमरीकी कविताएँ

मेरी ऑलिवर

मेरी ऑलिवर (1935–2019) का नाम इस सदी के उन चुनिंदा अंग्रेजी कवियों में शुमार है जिनकी कविताएँ बेहद लोकप्रिय हैं। प्रकृति और मानव-मन के गहरे अंतःसंबंधों को तलाशती अपनी कविताओं के लिए उन्हें पुलिल्जर पुरस्कार तथा नेशनल बुक अवार्ड जैसे नामचीन पुरस्कारों से नवाज़ा गया और उनकी तुलना इमर्सन जैसे स्वजदर्शी कवि से की गई।

अनुवाद :

झरना मालवीय
असिस्टेंट प्रोफेसर, अंग्रेजी
विभाग, श्यामा प्रसाद
मुखर्जी कॉलेज, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय।

जब मैं दरख्तों के बीच होती हूँ

जब मैं दरख्तों के बीच होती हूँ
खासकर विलो, हनी लोकस्ट
और बीच, ओक और पाइन के बीच
वे देते हैं उत्फुल्लता की अनगिनत आहटें
ऐसे कहूँ, शायद वे बचा लेते हैं मुझे
और हर रोज ही
मैं खुद से की गई उम्मीदों से इतनी जुदा हूँ
कि हो मेरे पास भलापन और सद्बुद्धि
मैं इस दुनिया से कभी न गुजरूँ जल्दबाजी में
धीरे चलूँ, और अक्सर सिर झुकाऊँ
मेरे चारों ओर दरख्त हिलते हैं पत्तियों में अपनी
और पुकारते हैं- ‘ठहरो यहाँ कुछ घड़ी!’

उनकी शाखों से बहती है रोशनी
वे फिर पुकारते हैं- ‘बहुत आसान है यह’
कहते हैं- ‘और तुम भी तो आई हो
इस दुनिया में यही करने, सहज होने
प्रकाश से भर जाने, प्रकाश बिखेरने के लिए।’

जंगली बत्तख

तुम्हें नेक नहीं बनना है
तुम्हें अपने घुटनों पर चल कर नहीं पार करना है
मरुस्थल में सौ मील

तुम्हें सिर्फ प्यार करने देना है
 अपनी देह के कोमल प्राणों को
 जिसे वह करना चाहता है प्रेम
 तुम बताओ मुझे दुख और बेबसी अपनी
 मैं तुम्हें अपनी सुनाऊंगी

इस दौरान दुनिया चलती रहेगी

सूरज और वर्षा से धुले कंकड़
 चलते रहेंगे अपने-अपने नभ-जल-थल से
 पार करते घास के मैदानों और सधन पेड़ों को
 पहाड़ों और नदियों को

इस दौरान जंगली बत्तख

ऊंचे स्वच्छ नीले आकाश से
 आते रहेंगे वापस अपने घर की ओर
 तुम जो भी हो, चाहे जितने भी अकेले
 दुनिया प्रस्तुत है तुम्हारे सामने कल्पनाओं के लिए
 तुम्हें बुलाती है वह जंगली बत्तखों की तरह
 कर्कश और रोमांचित स्वर में
 बार-बार घोषणा करती है तुम्हारे स्थान की
 नाना वस्तुओं के इस परिवार में।

ग्रीष्म का दिन



किसने बनाया दुनिया को?
 किसने बनाया हंस को, और काले भालू को?
 किसने बनाया टिढ़ी को?
 यह टिढ़ी, मेरा मतलब है -
 यह जो घास से बाहर उछल आई है
 यह जो मेरे हाथ से चीनी खा रही है
 जो अपने जबड़े आगे-पीछे कर रही है
 ऊपर-नीचे की जगह
 जो धूर रही है चारों ओर
 अपनी बड़ी और जटिल आंखों से
 अब वह उठा रही है आगे की अपनी टांगें नरम

और पोंछ रही है अपना मुँह अच्छी तरह
 उसने खोल लिए हैं पंख और अब उड़ चली है
 मैं नहीं जानती ठीक-ठीक क्या है प्रार्थना
 मैं नहीं जानती कैसे करती हैं वे ध्यान
 और कैसे गिरती हैं धास पर
 कैसे टेकती हैं धास पर अपने घुटने
 कैसे निश्चित और फुर्सत से भरे मन
 जिंदगी की रहमतों को पाते हैं
 कैसे भटकते हैं मैदानों में
 जैसा आज मैं भटक रही हूँ पूरे दिन ही
 बताओ मुझे, मैं और क्या करती?
 क्या हर चीज अंतः मृत्यु की ओर नहीं जाती
 और कई बार बहुत जल्दी ही
 बताओ क्या है तुम्हारा इरादा
 इस एक कीमती और बावली-सी जिंदगी में?

बीती रात बारिश ने मुझसे बातें कीं

बीती रात
 बारिश ने बातें कीं मुझसे
 आहिस्ते से कहा, कितना आह्लादक है
 भागते बादलों से बाहर निकलकर गिरना
 फिर से खुश होना
 नई तरह से इस धरती पर!
 यही कहा उसने
 जब वह गिरी लोहे-सी महकती
 और गायब हो गई
 महासागर के किसी स्वप्न-सी शाखों पर
 फिर नीचे धास पर बारिश खत्म हुई
 आसमान खुल गया
 मैं खड़ी थी एक पेड़ के नीचे



वह पेड़
 खुशमिजाज पत्तियों का एक पेड़ था
 मैं मैं थी
 और आसमान में तारे थे
 और वे भी... वे भी थे
 उस पल जिस पल कि
 मेरे दाहिने हाथ ने
 मेरे उस बाँहं हाथ को थामा हुआ था
 जिसने उस पेड़ को थाम रखा था
 जो तारों से भरा था
 और भरा हुआ था कोमल वर्षा से
 कल्पना करो, कल्पना!
 वे लंबी और अद्भुत यात्राएँ
 जो अभी होनी हैं हमारी ।

जब मौत आए

जब मौत आए
 पतझड़ में भूखे भालू की तरह
 जब मौत आए और अपने बटुए से
 सारे चमकते सिक्के निकाल ले
 मुझे खरीदने के लिए
 फिर बंद कर ले अपना बटुआ तपाक से
 जब मौत आए चेचक की तरह

 जब मौत आए
 कंधों की हड्डियों के बीच हिमखंड की तरह
 मैं चाहती हूँ कि मैं दरवाजे से बाहर कदम रखूँ
 कौतूहल से लबरेज, सोचते हुए
 आखिर कैसी होने जा रही है अंधकार की वह
 कुटिया
 इसीलिए मैं हर चीज को देखती हूँ
 भाइयों के बिरादराना बंधुत्व





और बहनों के अटूट बांधवीत्व की तरह
मैं वक्त को देखती हूँ
एक विचार से अधिक किसी भी तरह नहीं
मैं अनंत काल को मानती हूँ
एक और संभावना

मैं मानती हूँ कि हर जीवन एक फूल है
उतना ही साधारण
जितना मैदान का डेजी
और उतना ही अनुपम

मुँह में आया हर नाम है एक सहज संगीत
बढ़ता हुआ हर संगीत मौन की ओर
हर देह है अतिमानवीय साहस के चीते-सी
इस पृथ्वी के लिए कुछ बेहद कीमती

जब सबकुछ खत्म हो रहा हो
मैं कहना चाहती हूँ :
सारा जीवन मैं एक नव-वधु थी
विस्मय से ब्याही हुई
मैं वह नव-वर थी
जिसने भरा दुनिया को बाहों में अपनी

जब खत्म हो सब कुछ मैं नहीं सोचना चाहती
क्या मैंने अपने जीवन को
कुछ विशिष्ट और यथार्थपूर्ण बनाया
मैं नहीं चाहती कभी आहें भरना
और खुद को डरा-सहमा देखना
या भरा हुआ तर्क-वितर्क से
मैं नहीं चाहती कि अंत मैं यह हो मेरा जीवन-सार
कि मैं इस दुनिया में बस महज थी ।

38/28, अमरनाथ झा मार्ग,
जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद-211002
jharnamalaviya@gmail.com



प्रतिभा सिंह

शोध छात्रा

विकास अध्ययन
केंद्र, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय,
प्रयागराज।

बच्चों की दुनिया का हाल

बच्चों के लिए यह दुनिया जिज्ञासा और उम्मीद से हरी-भरी होनी चाहिए। लेकिन क्या वास्तव में इस दुनिया में बच्चों के लिए जगह है? कहते हैं कि बच्चा जब पैदा होता है तो कोरा कागज होता है। वह कच्ची मिट्टी होता है, हम और हमारा समाज उसे जैसा चाहे बना सकता है। लेकिन ऐसा क्यों है कि आज का बच्चा उदास है, बोझिल है! आमतौर पर आज के परिवारों में बच्चों के लिए न दादी-दादा की कहानियाँ हैं और न ही उनकी जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए माँ-बाप के पास समय है। बाल मनोविज्ञान की समझ भी कच्ची है। उनके बस्तों का बोझ कम करने और रोचकता के साथ विज्ञान से जोड़ने के उपायों पर चर्चा भी नहीं के बराबर है। उन्हें अच्छे साहित्य से जोड़कर ही एक अच्छा संवेदनशील युवा बनाया जा सकता है। यह भी देखा जाता है कि आज भी अधिकांश घरों में यदि बच्चों में लड़का है तो उसकी देख-रेख लड़कियों से बेहतर होती है। लड़कियों को घरेलू कामों से परिचित कराया जाता है तो लड़कों को बाहरी दुनिया से जोड़ा जाता है। क्या इन स्थितियों में लैंगिक दृष्टि से हम एक बेहतर समाज बना सकते हैं?

बाल श्रम और शोषण कम होने के बजाय बढ़ता जा रहा है। कालीन उद्योग हो या शीशा उद्योग या कोई होटल या रेस्त्रां आज भी यहाँ बाल श्रम का अमानवीय चेहरा देखने को मिलता है। 2013 के आंकड़े के अनुसार विश्व में लगभग 5 से 17 साल के 30 करोड़ बच्चे बाल

मजदूरी कर रहे थे ।

नेशनल क्राइम रिपोर्ट ब्यूरो (एनसीआरबी) की 2016 की रिपोर्ट पर नजर डालें तो भारत में बच्चों के साथ आपराधिक गतिविधियों में इजाफा हुआ है । 2014 में बच्चों के साथ अपराध की 89,423 घटनाएँ दर्ज हुईं । 2015 में 94,172 और 2016 में 1,06,958 घटनाएँ दर्ज हुईं । 2016 में बच्चों के साथ घटी ऐसी घटनाओं में 36,022 मामले बाल यौन शोषण, पॉक्सो एक्ट से संबंधित थे । इनमें सबसे ज्यादा मामले उत्तर प्रदेश के थे ।

क्या ऐसे ही बच्चों से देश का भविष्य बनेगा? इन्हीं स्थितियों, जिज्ञासाओं और प्रश्नों से यह परिचर्चा प्रेरित है ।

सवाल

1. बच्चों की समकालीन दुनिया में किस तरह का संकट है?
2. बच्चों के लिए दुनिया कैसी होनी चाहिए?
3. बच्चों की दुनिया में साहित्य किस तरह शामिल है?
4. बच्चों की दुनिया में शिक्षा और परिवार की भूमिका कैसी है और कैसी हो?
5. बच्चों की दुनिया में लड़के और लड़की होने का क्या अर्थ है और उससे क्या फर्क पड़ता है?
6. बाल श्रम और शोषण से मुक्ति के संभावित उपाय क्या हो सकते हैं?

महिला छात्रावास परिसर, हाल ॲफ रेजिडेंस, कक्ष सं. 153, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 211002 मो. 7084628596

email : swayampratibha@gmail.com





बच्चों की दुनिया में कल्पनालोक शामिल नहीं है लड़की अपने को भाई से कमतर समझती है

आरती स्मित

बाल सुधार के लिए
सामाजिक रूप से
सक्रिय रचनाकार।
दिल्ली विश्वविद्यालय
में सहायक प्रोफेसर।

(1) आजकल, खासकर महानगरों के अधिकांश युवा माता-पिता के पास अपने बच्चों के साथ बिताने के लिए वक्त नहीं होता। कारण, दंपति का कामकाजी होना है। यह उनकी विवशता भी है। महंगाई की मार शिक्षा पर भी है। किसी बड़ी नर्सरी में नामांकन के लिए लाख रुपये से कम नहीं लगते। आजकल सभी मध्यवर्गीय माता-पिता अपने बच्चे को निजी स्कूलों में पढ़ाना चाहते हैं। यह उनकी दृष्टि में स्टेटस सिंबल है। प्ले स्कूल कहने को प्ले स्कूल होता है। इसमें बच्चे कभी आनंदित होते हैं तो अधिकांशतः नींद से बोझिल अवस्था में स्कूल के लिए तैयार होने को विवश। दो-ढाई वर्ष का शिशु भी सबजेक्ट की जगह ऑब्जेक्ट हो गया है, जहाँ उसकी मर्जी के लिए कोई जगह नहीं। उसे नन्ही उम्र से माँ-बाप द्वारा थोपी गई दिनचर्या में जीना होता है। कई बार छह माह के शिशु को भी माँ का साथ हर वक्त नसीब नहीं होता। यह बहुत दुखद है। लगता है कि इस दुनिया में बच्चों के लिए जगह नहीं।

आज मध्यवर्गीय बच्चों के पास खिलौने तो जुट गए हैं, मगर वे संबंधों की खुशबू से महसूम होते जा रहे हैं। निम्नवर्गीय बच्चों के माता-पिता मजबूर हैं।

**बच्चों की दुनिया में
कल्पनाओं के सुंदर
सतरंगे उड़नखटोले होते
हैं, जिन पर वे खुली
आँखों से भी विचरण
करते हैं। उन्हें उड़ान
भरना प्रिय होता है।
उन्हें हमजोलियों के साथ
कुछ भी रचना-बुनना
अच्छा लगता है।**

उन्हें दो वक्त की रोटी के लिए मशक्कत करनी पड़ती है, चाहे वे छोटे शहर में हों या महानगर में या गाँव में। उनका शिशु उनकी आँखों के सामने धूल-मिट्टी में खेलते-लिपटते बड़ा होता है। हालांकि स्कूल भेजने के प्रति अब वे अनपढ़ माएँ भी सजग हैं। वे सरकारी स्कूल में बच्चे को लाने की जद्दोजहद करती हैं। उनका परिवेश उन्हें लाचार करता है, फिर भी वे यही चाहती हैं

कि उनका बच्चा भी दो अक्षर पढ़ ले। लेकिन ऐसे बच्चों को अपनी सुविधाहीन बस्ती में नैसर्गिकता मिलती है। वे एक जैसे होते हैं और अपने हिस्से की मस्ती कर लेते हैं।

उच्च-मध्यवर्गीय बच्चे नौकर-चाकर और सुख-सुविधाओं से घिरे, एक सीमा से बाहर झाँक ही नहीं पाते। उन्हें हर समय हर बात के लिए ताकीद की जाती है। जोर से हँसे तो मुश्किल, जरा चिल्ला दें तो ‘बैड मैनर्स’ कहकर रोक दिया जाता है। खाना या तो आया खिलाती है या कॉटे चम्मच से खाना सिखाया

जाता है। बच्चा उन अनुभूतियों से गुजर ही नहीं पाता जिन्हें वास्तव में बचपन की अनुभूतियाँ कहते हैं। अब यही ‘वेल मैनर्स’ साधारण मध्यवर्गीय माँ-बाप भी अपने बच्चों को सिखाने में लगे रहते हैं। नतीजा, बच्चा अपने नैसर्गिक गुणों के बदले माँ से ‘नो-नो-नो’ सुनता हुआ अजीब मनःस्थिति में जीने लगता है। उसका अवचेतन मन माता-पिता के बनाए रास्तों पर चलते हुए ढंद्द से घिरा होता है। कई बार यह ढंद्द खीझ के रूप में तो कई बार विरोध और चिड़चिड़ाहट के रूप में प्रकट होता है। यह संकट मामूली नहीं है। अफसोस है, इस ओर युवा माता-पिता का ध्यान क्यों नहीं जाता!

(2) बच्चों को संबंधीं की प्रेमिल दुनिया चाहिए, जहाँ वे स्वाभाविक रूप से खुल सकें, खिल सकें। जहाँ माँ के गले से झूलने, पिता की गोद में बैठने और दिनभर की जमा बातों को सुनाने का अवसर हो, जहाँ बच्चे पारिवारिक रिश्तों की आवाजाही की महक पा

सकें, जहाँ उन्हें खुलकर उछलने-कूदने, मनमरजी करने और अपनी बात खुलकर कहने की पूरी आजादी हो। बच्चों की दुनिया में कल्पनाओं के सुंदर सतरंगे उड़नखटोले होते हैं, जिन पर वे खुली आँखों से भी विचरण करते हैं। उन्हें उड़ान भरना प्रिय होता है। उन्हें हमजोलियों के साथ कुछ भी रचना-बुनना अच्छा लगता है। संभव है कि वयस्कों को उनकी ये बातें बेतरतीब लगें, मगर उनके ये बेतरतीब कार्य-व्यवहार ही उन्हें आनंद देते हैं।

मेरी समझ में यह नहीं आता कि हम जब अपने बचपन में कहानियाँ सुनकर, समूह में खेलकर और काम कर रही माँ के पीछे-पीछे घूमना और थोड़े बड़े होने पर कंचे, पिट्ठो, छुपन-छुपाई खेलकर और पतंगों के पीछे भागकर खुश होते थे तो अब ये क्यों चाहते हैं कि आज के बच्चे ऐसे खेल खेलें, जिनमें उनके कपड़े गंदे न हों, उन्हें कोई खरोंच नआए, वे अपने हमउम्रों के साथ तू-तू-मैं-मैं न करें। हम क्यों उन्हें तुरंत अपने में समेटकर ‘वेल बिहेव’ का पाठ पढ़ाने लगते हैं। इतना ही नहीं, तुरंत उनकी कमियों की लिस्ट सामने रख देते हैं।

आज निहायत जरूरी है कि माता-पिता बच्चों की दुनिया में शामिल हों। उनकी दुनिया में कल्पनालोक शामिल करें। उन्हें कहानियाँ सुनाएँ और रंगों से दोस्ती करने दें, बगैर यह चिंता किए कि कपड़े गंदे होंगे या



दीवार गंदी होगी। उन्हें मॉल घुमाने के बजाय आस-पास की उन चीजों से जोड़ें जो सजीव हैं या नैसर्गिक हैं। बच्चा केवल चित्र में उगता सूरज न देखे, वह सुबह की लालिमा भी महसूस करे। वह चाँद को बालकोंनी से न झाँके, बल्कि माता-पिता या परिवार के सदस्यों की उँगली थामे, खुले में चाँदनी की शीतलता का अनुभव भी करे। तारों से बातें करे। बड़े बच्चों को इतना अवसर दें कि वे अपनी दुनिया अपने अनुभवों से गढ़ सकें।

बच्चों को कोयल, कौए, कबूतर और गौरैयों को



देखने-सुनने, फूलों से, पत्तों से बातें करने, तितलियों को पकड़ने-दौड़ने और गिलहरियों की बोली गौर से सुनने का समय दें। गाय, घोड़े या जो पशु आसपास दिख सकते हैं, उन्हें

दिखाएँ। बच्चों को कुछ समय दें ताकि वे खुद को उनके साथ जोड़ सकें।

मेरा अनुभव रहा है, इन बातों के साथ यदि छह माह की उम्र से ही बच्चों के सामने रंगीन चित्रात्मक पुस्तकें, रंगीन खिलौने और मधुर संगीत वाला खिलौना रखा जाए तो शिशु के मानसिक और बौद्धिक विकास की गति सकारात्मक होती है। जरूरी यह भी है कि माँ की मौजूदगी हो। एक शिशु की दुनिया में माँ का होना सबसे अधिक जरूरी है। कम से कम 5 वर्ष की उम्र तक। क्योंकि यही वह समय है जब व्यक्तित्व का निर्माण सबसे तीव्र गति से होता है। बचपन जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव है। इसलिए मेरे विचार से, नन्हे बच्चों को उनकी दुनिया गढ़ने में हम बड़े सिर्फ सहयोगी बनें,

आलोचक या नीति-निर्देशक नहीं।

(3) मुझे ऐसा लगता है, बच्चों के मानसिक और बौद्धिक विकास को लेकर चिंतित हर व्यक्ति इस सोच से गुजर रहा है। जहाँ तक लिखित साहित्य की बात है तो छोटे बच्चों को रंगीन चित्रात्मक कथा साहित्य और तुकबंदी वाली कविताओं की पुस्तकें लुभाती हैं। शिशु के लिए तो

गांवों में आज भी संयुक्त परिवार बचे हुए हैं। चूल्हा अलग होने पर भी एक आंगन सबको जोड़कर रखता है। वहाँ शिशु पर समूह के स्वभाव का कमोबेश असर पड़ता है। उसका कोमल मस्तिष्क मानवीय गुण-दोषों को अपेक्षाकृत अधिक ग्रहण किए चलता है।

ही कहानी सुनाते हैं, जबकि बाल साहित्य में शब्द और वाक्य अधिक होते हैं।

जहाँ तक किताबों के प्रति बच्चों में रुझान का सवाल है, मेरा निजी अनुभव यही है कि शैशवावस्था से ही बच्चों को पुस्तकों के स्पर्श से जोड़ना चाहिए। पुस्तकें छूने, कहानियाँ सुनने और खेल-खेल में ही नए शब्द या नई चीजों से जोड़ने की कला घर से ही शुरू होनी चाहिए। क्रेचर और प्ले स्कूल विकल्प हैं, फिर भी वे हर एक शिशु के लिए सचेत नहीं हो सकते। कई बार यह भी देखा गया है कि प्ले स्कूल जाकर बच्चे बाहरी गतिविधियों से जुड़ जाते हैं, मगर साथ में कुछ ऐसी आदतें सीख लेते हैं जिन्हें छुड़ा पाना कठिन होता है।

दूसरे, आजकल प्ले स्कूल की मुख्य भूमिका नन्हे-मुन्हों

को नर्सरी में दाखिले के योग्य बुद्धिमान और कुछ रटे-रटाए सवालों के फटाफट जवाब देने योग्य प्रतिभागी बनाने की होती है। माँएँ जब कहती हैं, ‘बच्चा मुझसे नहीं पढ़ता, प्ले स्कूल में अधिक सीख रहा है’, वे भूल जाती हैं कि उनकी अपनी आरंभिक शिक्षा बिना गैजेट और प्ले स्कूल के कैसे हुई थी! प्रश्न उठता है, क्या वे माँएँ जिंदगी की रेस में स्वयं को कमतर मानती हैं? अजीब-सा जवाब मिलता है, ‘वह समय कुछ और था। आज अच्छे स्कूल में एडमिशन कठिन है।’

मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसे लिपे-पुते जवाब पर हँसा जाए या दुखी हुआ जाए। वक्त कभी एक-सा नहीं रहता। एक लहर उठी और सब उसमें समाने को तैयार हो गए।

आप सोचें, बच्चे को दो-ढाई वर्ष की उम्र से एक बंधी-बंधाई दिनचर्या की खूँटी पर टांग देना क्या उन्हें रोबोट बनाया जाना नहीं है? आज उसकी कल्पना को नैसर्गिक उड़ान भरने का अवसर न के बराबर मिलता है। युवा



माँ-बाप को समझना होगा कि प्रत्येक बच्चे की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक क्षमता परस्पर भिन्न होती है। उसका रूप-रंग, भाषा-शैली, आचार-व्यवहार, रुचि-अरुचि, किसी चीज को देखने और उससे जुड़ने का स्वभाव भी एक-दूसरे से भिन्न होता है। फिर उसमें शामिल होता है संस्कार। इसलिए शैशवकाल में सबसे अधिक ध्यान देने की जरूरत होती है। पहले जमाने में छह वर्ष के बच्चे का दाखिला स्कूल में होता था, उससे पहले बच्चा घर पर ही हँसते-खेलते कुछ-कुछ पढ़ना-लिखना और शिष्टाचार की बातें सीखता था।

दरअसल, बाल शिक्षा की बात को हम वयस्क जितने हल्के रूप में लेते हैं, यह ठीक नहीं है। शिशु पाँच-छह माह

में बैठने लगता है और हाथ से कमरे के बाहर उजाले की ओर इशारा करता है। वह संगीत की धुन पर पाँव उठाकर नाचता है, चिड़ियों की चहचहाट को बड़े ध्यान से सुनता है, माँ या किसी परिचित चेहरे को देखकर या उसकी आवाज सुनकर मुस्कराता हुआ हाथ-पैर तरंगित करता है तो कोई शुष्क या कठोर आवाज सुनकर या कठोर चेहरा देखकर डर से रोने लगता है। शिक्षा की पहली सीढ़ी यहीं से शुरू हो जाती है।

**आप गौर करें तो पाएंगे कि
जाने-अनजाने ऐसे बच्चों
के भीतर मिलनसारिता,
दूसरों के दर्द के प्रति
संवेदना और सहयोग का
भाव कमने लगा है। दूसरी
तरफ होड़ लेने की प्रवृत्ति
बढ़ी है। सामूहिक विकास
की भावना लुप्त हो रही है।**

दिखाएँ, उनके बारे में बताएँ। शिशु का मन इन चीजों से जुड़ता जाएगा। बड़े होने पर वह कभी उन्हें नष्ट करने की सोचेगा भी नहीं।

साल भर का शिशु अक्सर कुछ कदम चलने लगता है। सप्ताहांत पर माता-पिता उसे मॉल और रेस्तराँ घुमाने के बजाय चिड़ियाघर, खुले उद्यान, नदी, नहर, आसपास के पशु-पक्षी के पास ले जाएँ। फूलों और पत्तों से हिलने-मिलने दें, तितलियों को देखकर चहकने दें। उसे उन विषयवस्तुओं का जीवंत एहसास होने दें तो फिर शिशु को पुस्तक से वे ही चीजें रट कर याद कराने की जखरत नहीं पड़ेगी। शिशु देखी, सुनी और स्पर्श की गई चीजों को जल्दी पहचान लेते हैं। माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्य खेल-खेल में कविता-कहानी के माध्यम से शिक्षा दें तो यह व्यावहारिक शिक्षा होगी। पांच-छह वर्ष तक के बच्चों को स्वाभाविक

रूप से चीजों को जानने-समझने देने से उनकी बौद्धिक क्षमता बढ़ती है। एक बार फिर बच्चे को स्लेट-पेंसिल की दुनिया में लौटा लाएँ। उन्हें स्लेट पर आड़ी-तिरछी लकीरें खींचने दें, मन की उड़ान चित्र बनकर स्लेट पर उतरती रहे। उन्हें रंगों से कागज और हाथ गंदे करने दें, न रोकें और न बाद में उनसे पूछें कि उन्होंने क्या लिखा या क्या बनाया है? यकीन मानें, वे नहें मुन्ने बड़े प्यार से आपको खुद बताएँगे। संभव है कि चित्र जोड़कर कोई कहानी भी गढ़ लें और आपको सुनाएँ। बशर्ते माता-पिता के पास



इतना धैर्य और समय हो कि वे अपने शिशु के सर्वांगीण विकास के हर चरण को देख-समझ सकें। स्कूल में भी यदि शिक्षक बच्चे से उसके पूर्व ज्ञान पर बात करें तो बच्चे अपनी तुलाती जुबान से भी बढ़-चढ़ कर बताते हैं।

इससे बच्चे की झिझक खुलती है और वे संवाद स्थापित करने में स्वयं को सहज महसूस करने लगते हैं।

स्कूली शिक्षा पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन की जरूरत है। कक्षा एक से तीन तक के बच्चों के ऊपर ज्ञान थोपने या उन्हें रट्टू तोता बनाने के बदले शिक्षक उन्हें कहानी, कविता खेल के माध्यम से वर्ण, शब्द और लघुवाक्य बनाना सिखा सकते हैं। ‘लैंगेज एंड लिटरेचर फाउंडेशन’ संस्था दूरदराज के ग्रामीण/आदिवासी बच्चों को ध्यान में रखकर पिछले एक दशक से सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का काम कर रही है। उन्हें सफलता भी मिली है। इसके निदेशक धीर झींगरन की गहरी सोच का परिणाम है कि शिक्षक छात्रों को समझने की नई दृष्टि पा रहे हैं। इसके साथ ही दिल्ली के सरकारी स्कूलों का नवीन ढाँचा अनुकरणीय है, जहाँ हर बच्चे को निखरने का भरपूर

अवसर मिल रहा है। स्कूलों में रोचक चित्रात्मक पुस्तकों से बच्चों की मेधाशक्ति और उनकी कल्पनाशक्ति का विकास किया जा सकता है।

(4) बच्चों की दुनिया हमारे बीच ही है, पर वह अपने में अलग और निराली भी होती है। इस बात को हर वयस्क को समझना होगा। यदि हम बच्चों की दुनिया में

प्रवेश करें और उनकी दृष्टि से देखें तो उनकी दुनिया की आरंभिक सीमा परिवार तक ही होती है जो ‘माँ’ से शुरू होकर, पिता, भाई-बहन, दादा-दादी और इसी प्रकार ननिहाल से होते हुए नाते-रिश्तेदारों, आस-पड़ोस के बीच फैलती जाती है। बच्चे का दिल और दिमाग खाली कैनवास की तरह होता है। वह आरंभिक एक वर्ष में सबसे अधिक भाव और विचार ग्रहण करता है। उसके मस्तिष्क का सबसे अधिक

मोबाइल का सदुपयोग करें। कोई मधुर संगीत धीमी आवाज में बजा दें, शिशु सकारात्मक ऊर्जा के साथ मुस्कुराता हुआ जगेगा। उसे कमरे से बाहर लाकर सूरज, पक्षी और पेड़ दिखाएं, मोबाइल या टीवी पर नहीं।

विकास इसी समय होता है। इसके बाद 1 से 3 वर्ष की आयु तक विकास-प्रक्रिया तीव्रतर रहती है, फिर 3 से 5 वर्ष की आयु तक। छठे वर्ष से मस्तिष्क विकास की प्रक्रिया औसत गति से होती है। विडंबना यह है कि हम वयस्क, विशेषकर माता-पिता और अभिभावक इन्हीं खास वर्षों को या तो यों ही बीत जाने देते हैं या दो-ढाई वर्ष की उम्र से उसे रद्द तोता बनाना शुरू करने में अपनी ऊर्जा लगा देते हैं। वेतनभोगी केयरटेकर से शिशु/ बच्चे के सही शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास की अपेक्षा करना बेमानी है। सच यह है, माँ के अलावा कोई भी बच्चे के सर्वांगीण विकास का सक्षम सहयोगी नहीं हो सकता।

परिवार में प्रेम और कलह दो तरह के परिवेश बनते हैं। इसका सीधा असर शिशु के दिलोदिमाग पर होता है। केवल यह नहीं कि शिशु के साथ परिवार का व्यवहार

कैसा है। यह भी उतना ही मायने रखता है कि शिशु के सामने परिवार के सदस्य आपस में एक-दूसरे से कैसा बर्ताव करते हैं। दूसरे, यह भी कि परिवार संकृचित, अंधविश्वासी, झगड़ालू या क्रूर मानसिकता का है या सात्त्विक, तार्किक, खुली दृष्टि और विचारवाला, उदार, दयालु आदि गुणों से पूर्ण। इसका सीधा असर शिशु पर पड़ता है। परिवेश की सूक्ष्म से सूक्ष्मेतर बातें शिशु पर प्रभाव डालती हैं।



वर्तमान समय संक्रांति काल कहा जा सकता है। 21वीं सदी गैजेट, मोबाइल आदि की बड़ी दुनिया लेकर आया है। बहुतों की चिंता मध्यवर्गीय शहरी बच्चों से संबद्ध होती है, क्योंकि

आज भी शहरों की झुग्गियों में पलते निम्नवर्गीय बच्चों या ग्रामीण बच्चों के पास गैजेट की पहुँच उस स्तर पर नहीं है। ठीक इसी तरह उनके पालन-पोषण और प्राथमिक शिक्षा देने में परिवार की भूमिका भी अलग-अलग है। निम्नवर्गीय परिवार की समझ रोटी जुटाने तक सीमित होती है, ऐसे में शिशु के मानसिक विकास की सोच के लिए समय कहाँ होता है! गांवों में आज भी संयुक्त परिवार बचे हुए हैं। चूल्हा अलग होने पर भी एक आंगन सबको जोड़कर रखता है। वहाँ शिशु पर समूह के स्वभाव का कमोबेश असर पड़ता है। उसका कोमल मस्तिष्क मानवीय गुण-दोषों को अपेक्षाकृत अधिक ग्रहण किए चलता है। हालांकि इस परिवेश में रहने वाली माँ चाहे तो भी हर समय शिशु के सर्वांगीण विकास के प्रति सचेत नहीं रह सकती।

अब महानगरीय वातावरण के मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय परिवार के बच्चों की बात करें। सोसाइटी के भीतर पनपनेवाली फ्लैट संस्कृति ने असली-नकली वृक्षों-घासों से निर्मित पार्क, झूले और तमाम तामझाम तो उपलब्ध करा दिए, बस संबंधों की नैसर्गिकता को रिसने से बचा पाने में वह सक्षम नहीं है। संबंधों में परोक्ष रूप से कायम खोखलापन का असर भी बच्चों के मन-मस्तिष्क पर होता है। माँ यदि कामकाजी है तो बच्चे की आरंभिक परवरिश बाहरी रूप से अच्छा भले

हमारे आजाद देश ने यदि गांधी की नई तालीम को अमल में लाया होता तो बालश्रम को रोकने के लिए कानून बनाने की ज़खरत ही न पड़ती। मान लिया, वे श्रम नहीं करेंगे, लेकिन दिन में तीन बार रुखा-सूखा तो नसीब हो! गांधी ने कहा था, ‘गरीबों के लिए रोटी ही भगवान है।’ और यह अक्षरशः सत्य है।

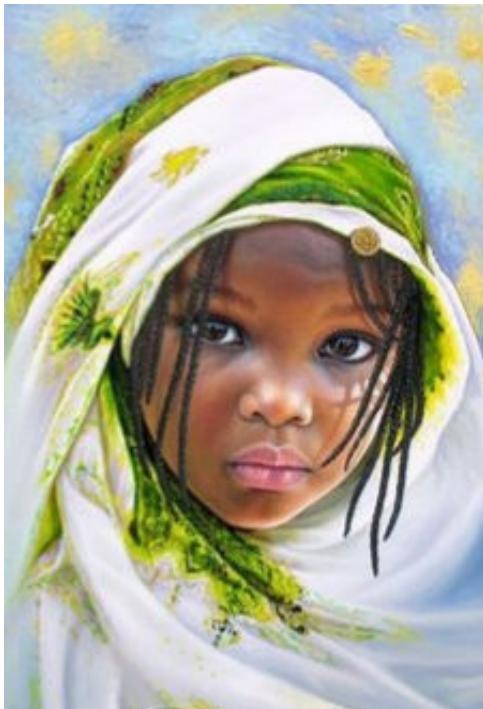
ही दिखे, मगर होता नहीं है। इसी समय शिशु को खिलौने की तरह मोबाइल थमा दिया जाता है या टीवी के सामने लिटा-बिठा दिया जाता है, बगैर इस बात पर ध्यान दिए कि टीवी के कार्यक्रमों का असर भी शिशु पर होता है। कई परिवारों में शिशु को पास लिटाकर या गोद में लेकर टीवी पर बहसें, धारेलू झगड़ों या अंधविश्वास से भरे

धारावाहिक में तल्लीन वयस्क देखे जाते हैं।

काम करते समय टीवी या मोबाइल पर गाने या कार्टून चैनल/वीडियो लगाकर शिशु को शांत रखने की आदत पिछले दशक में जोर-शोर से विकसित हुई है। इतना ही नहीं, कई बार माँएँ या परिवार के अन्य सदस्य मोबाइल या अन्य गैजेट देकर शिशु को बहलाने की कोशिश ही नहीं करते, इन्हें अपने आपको मुक्त रखने का संसाधन भी बना लेते हैं। उन्हें याद ही नहीं रहता कि शिशु खुलकर बोल नहीं सकता, मगर सुन तो सकता है, अपने कानों तक पहुँचने वाली हर ध्वनि के प्रति सचेत तो हो सकता है, उसके प्रति

शारीरिक-मानसिक प्रतिक्रिया तो व्यक्त कर सकता है और कई बार धीरे-धीरे उस शोर का आदी भी हो सकता है।

इतना ही नहीं, शिशु धीरे-धीरे गैजेट का इस कदर आदी हो जाता है कि मोबाइल-लैपटाप या उस तरह के अन्य



इलेक्ट्रॉनिक संसाधन पर मनचाहे कार्यक्रम देखे बिना मुँह में निवाला नहीं डालने देता और गैजेट के साथ अधिक से अधिक अकेले रहना चाहता है। आज का बच्चा यदि गैजेट को अपना साथी मानने लगा है तो उसमें दोष सिर्फ और सिर्फ परिवार का है। आप गौर करें तो पाएंगे कि जाने-अनजाने ऐसे बच्चों के भीतर मिलनसारिता, दूसरों के दर्द के प्रति संवेदना और सहयोग का भाव कमने लगा है। दूसरी तरफ होड़ लेने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। सामूहिक

विकास की भावना लुप्त हो रही है। हम कहने को कह देते हैं कि पता नहीं बच्चा क्यों जिद्दी, चिड़चिड़ा या मनमाना और असहयोगी हो गया है, मगर यह कहते हुए हम भूल जाते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को उसका साथी बनाकर हमने ही उसके कोमल मन में खर-पतवार भर जाने दिया है।

कई बार शिशु के मन पर कुछ व्यर्थ बातें इतनी गहरी पैठ जाती हैं, जिनका पता वर्षों नहीं चलता। वह शिशु किशोरावस्था या युवावस्था में भी खुद को उन्हीं बातों के चक्रवृह में घिरा पाता है। वह कई बार पूरी जिंदगी अपने ही स्वभाव को समझ नहीं पाता। गौर करें, आज मनोचिकित्सक की अधिक जरूरत किसे पड़ रही है? किशोरों या युवाओं को! कई बार भीतर ही भीतर घुटते ये किशोर/युवा गलत दिशा में बढ़ जाते हैं।

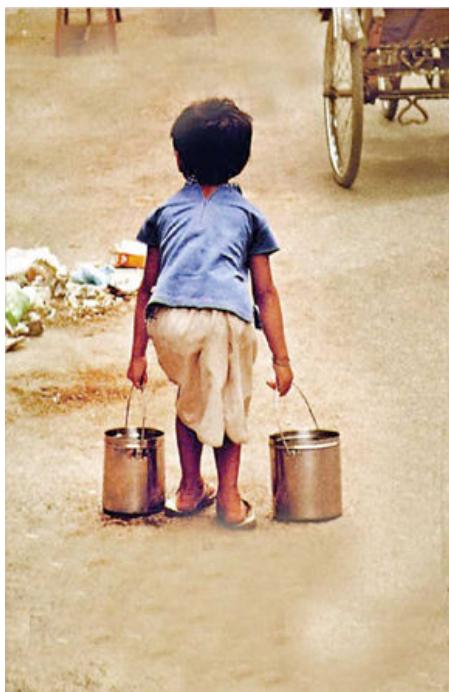
पहला स्कूल घर ही होता है। शिक्षा का यह अर्थ नहीं कि बच्चे ने कितनी भाषाओं में कितने हर्फ़ सीखे या पाठ्यक्रम कितनी जल्दी पढ़ना-लिखना सीखा। पढ़ना-लिखना सीखकर शिशु/बच्चा साक्षर होता है, शिक्षित नहीं। इसलिए शिक्षा का अर्थ केवल किताबी शिक्षा कर्ताई नहीं होना चाहिए। शिक्षा का अर्थ है उन मानवीय गुणों का विकास, जो बच्चे के चरित्र निर्माण में सहायक हों। यदि बच्चे में आरंभिक पांच-छह वर्ष तक चरित्र निर्माण और जीवन-मूल्यों के विकास की ओर ध्यान न दिया जाए तो उसकी नींव कमज़ोर रह जाती है।

गरीब और ग्रामीण परिवारों में आज भी बेटियों की शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी है। हालाँकि पहले की अपेक्षा शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियों की संख्या बढ़ी है। बावजूद इसके आज भी लड़कियों को छुट्पन से ही पढ़ाई के साथ घरेलू कामकाज में हाथ बंटाने के लिए कहा जाता है, जबकि लड़कों को खेलने के लिए।

बीजारोपण हम वयस्क करते हैं। अफसोस कि यह अंतर परिवार द्वारा अधिक आरोपित होता है। माता-पिता के व्यवहार में न भी दिखे, बुजुर्गों के व्यवहार में यह अधिक दिखता है। कई बार, इस तरह के भेद आरोपित करते समय वे सजग या सचेत भी नहीं होते, मतलब कि स्वाभाविक रूप से वे लड़के को अधिक महत्व देने लगते हैं। यह एक गंभीर समस्या है।

शहरों में भी आमतौर पर, परिवार द्वारा बच्चों में लड़का-लड़की में झीना फर्क करते पाया गया है। नतीजा यह है कि बाल्यावस्था में भाई जहाँ उद्दंड, जिद्दी, निरंकुश और लड़कियों को कमतर समझने की दुर्भावना से पोषित होता है, वहीं बहन स्वभावतः खुद को भाई से कमतर और

हर मामले में कमजोर समझने लगती है। कई बार भाई की गलती की सजा भी उसे भुगतनी पड़ती है। उसे अपना मत प्रकट करने से रोका जाता है। यहाँ तक कि बचपन से ही उसे माता-पिता और भाई के कहे अनुसार चलना पड़ता है। अपने लिए सोचने का अधिकार उसे नहीं मिलता। ऐसी बच्चियाँ मानसिक रूप से दब्बू, भीरु, सशंक और असुरक्षा की भावना से घिरी होती हैं और उनका मानसिक और बौद्धिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। वे अन्याय का तुरंत प्रतिरोध नहीं कर पातीं और अपनी सुरक्षा के लिए परजीवी होती हैं। शिक्षा के स्तर पर, मेधावी होने के बावजूद वे स्वयं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ पाती हैं और कई बार साक्षात्कार आदि में पिछड़ जाती हैं।



गरीब और ग्रामीण परिवारों में आज भी बेटियों की शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी है। हालांकि पहले की अपेक्षा शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियों की संख्या बढ़ी है। बावजूद इसके आज भी लड़कियों को छुट्पन से ही पढ़ाई के साथ घरेलू कामकाज में हाथ बंटाने के लिए कहा जाता है, जबकि लड़कों को खेलने के लिए। कई बार ऐसे लड़के

गलत दिशा में बढ़ जाते हैं। यदि निरक्षर दलित/मजदूर वर्ग की बात की जाए तो शहरी हो या ग्रामीण, इस वर्ग के पुरुषों में बच्चों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास के प्रति कोई चेतना नहीं जगती। स्वतंत्र दिखर्ती मजदूर स्त्रियाँ दोहरे पाट में पिसती हैं। यहाँ बच्चे पलने को बस पल जाते हैं, फिर घर संभालने या बाहर रोटी कमाने की सोच के साथ जुड़ जाते हैं, यही उनकी पहली शिक्षा है, जिसका परिणाम बालश्रम है।

(6) यह दुखद है कि आजादी के 72 वर्ष बाद भी

मैदानी इलाकों में बाल मजदूरी और भीख माँगने की प्रवृत्ति में कमी आने के बदले इजाफा हुआ है। पिछले पाँच वर्षों में दिल्ली सरकार ने सरकारी स्कूलों में शैक्षिक स्तर को इतना ऊँचा किया है, जितना निजी विद्यालय में भी हमें नहीं मिलता। बावजूद इसके पूरी दिल्ली में हर चौराहे, रेलवे फाटक, स्टेशन पर बच्चे भीख माँगते या कलम, गुलाब आदि बेचते हुए मिल जाएंगे। कुछ नन्हीं बच्चियाँ नटी के करतब दिखाती मिल जाएंगी। दिल रो उठता है बचपन को

दिल्ली, हरियाणा, बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुछ प्राथमिक विद्यालयों का दौरा करने के बाद ही मैं यह कह पा रही हूँ कि रोशनी जगी है... उजाला फैल रहा है।

इस तरह तिल-तिलकर दम तोड़ते हुए देखकर।

मैंने दिल्ली की अलग-अलग जगहों पर, ऐसे ही कुछ बच्चों से अलग-अलग बात की। यह जानना मेरे लिए दुखद था कि इनमें से कोई भी बच्चे ऐसा काम करते हुए खुश नहीं हैं। वे भी स्कूल जाना चाहते हैं, मगर माँ जबरन काम करवाती हैं। किसी न किसी गैंग के चंगुल में वह खुद या परिवार

का कोई सदस्य फँसा होता है। ये बच्चे स्कूल का फाटक निहारते हैं, घुसकर देखने का साहस नहीं जुटा पाते। यह भय उनके अपनों ने ही सौंपा है।

हालाँकि कुछ स्वयंसेवी संस्थाएँ और कुछ लोग निजी तौर पर इस दिशा में काम कर रहे हैं। मैं स्वयं यथासंभव प्रयासरत हूँ कि हर बच्चे के हाथ में पुस्तक हो, उनका स्कूल जाने का सपना पूरा हो, बेटियों को कमतर न आँका जाए। कुछ सीमा तक सफलता भी मिली है, मगर दिल्ली अभी दूर है।

बाल श्रम के उन्मूलन के लिए जो कानून बने, वे तबतक शत-प्रतिशत प्रभावी नहीं होंगे जब तक उन्हें बचपन से ही रोजगारपरक व्यावहारिक शिक्षा से नहीं जोड़ा जाएगा। एक वाक्य में कहूँ तो हमारे आजाद देश ने यदि गांधी की नई तालीम को अमल में लाया होता तो बालश्रम को रोकने

के लिए कानून बनाने की जरूरत ही न पड़ती। मान लिया, वे श्रम नहीं करेंगे, लेकिन दिन में तीन बार रुखा-सूखा तो नसीब हो! गांधी ने कहा था, ‘गरीबों के लिए रोटी ही भगवान है।’ और यह अक्षरशः सत्य है। बालश्रम और शोषण से मुक्ति कागज पर नहीं, बुनियादी जरूरतों की आपूर्ति से संभव है।

एक बात और, इन मासूमों की जिंदगी से खेलनेवाले गेंग का सफाया बहुत जरूरी है। उनकी नाल बहुत गहरी है। वे इन्हें पहले रोटी देते हैं, फिर सिगरेट-तंबाकू, फिर चरस-गाँजा। दिल्ली के आजादपुर के आसपास के इलाकों में बच्चों का ऐसा जत्था दिख जाएगा। वे मरते मर जाएंगे मगर अपने बॉस का नाम नहीं बताएंगे। इसका कारण बॉस के प्रति उनकी भक्ति नहीं, भय है। समस्या जितनी हल्की दिखती है, उतनी है नहीं। पुलिस-प्रशासन को कड़े कदम उठाने होंगे। साथ ही, उन माता-पिताओं को भी गोरख-धंधों से उबारकर, कमाई का नया जरिया देने की अनिवार्यता है। इस दिशा में प्रशासन को ठोस और व्यावहारिक कदम उठाने की जरूरत है।

मुझे स्वामी विवेकानन्द का लिखा याद आता है। उन्होंने अपने साथियों को एक पत्र में लिखा था, ‘पर्वत मुहम्मद के पास नहीं आता तो मुहम्मद को पर्वत के पास जाना होगा।’ इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा था, ‘गरीब किसान/मजदूर



के बच्चे घर छोड़कर स्कूल नहीं जा सकते तो आप उनके घर तक जाएँ और वहीं उन्हें शिक्षित करें। यदि वे खेत में हैं तो वहीं जाकर उन्हें शिक्षित करें। आप लैंप बनें और उन्हें रोशनी दिखाएँ।'

जब हर गरीब परिवार में बुनियादी जरूरतों के लायक आमद होने लगेगी, तब वे अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति अपेक्षाकृत अधिक जागरूक होंगे। मेरा निजी सर्वेक्षण यह रहा है कि सरकारी स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी है। उनमें आत्मविश्वास दिखने लगा है। दिल्ली, हरियाणा, बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुछ प्राथमिक विद्यालयों का दौरा करने के बाद ही मैं यह कह पा रही हूँ कि रोशनी जगी है... उजाला फैल रहा है। अपनी बात खत्म करने से पहले इतना जरूर कहना चाहूँगी कि समस्या एक-सी भले दिखती हो, मगर है नहीं। इसलिए बाल शिक्षा और बाल श्रम से संबद्ध कोई एक समाधान हर परिवेश में लागू नहीं किया जा सकता। बच्चे देश का भविष्य हैं और भविष्य तभी आभास्य होगा जब उसे वर्तमान में शिद्दत से सँवारा जाए।

मो. 8376836119

dr.artismit@gmail.com





अर्चना सिंह

समाज विज्ञानी,
गोविंद वल्लभ पंत
संस्थान, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय,
प्रयागराज।

बच्चों की दुनिया में लड़की होते ही उड़ान छोटी हो जाती है

समाज में बढ़ती हिंसा बच्चों की दुनिया को कठिन बना रही है

(1) बच्चों की दुनिया, मासूम, रंगों से भरी निर्विवाद दुनिया है। पर बच्चों की दुनिया का क्या सिर्फ यही सच है? हम जब बच्चों की दुनिया की बात करते हैं तो एक सजातीय दुनिया के बारे में सोचते हैं, क्या वास्तव में बच्चों की दुनिया सजातीय है? क्या बच्चों की दुनिया को समझने के लिए हमारे पास पर्याप्त अकादमिक उपकरण हैं? क्या बच्चों की दुनिया की बात करते समय हम अंधेरे कोने में दम घोटते बचपन को भी देखते हैं? शायद नहीं। बच्चों की दुनिया, उनका मनोविज्ञान, उनके संकट हम अपने ढंग से समझते हैं? हम बचपन को अपने ज्ञान, विवेक और अनुभव के अनुसार गढ़ना चाहते हैं और उसी फ्रेम में समझते हैं। शायद बच्चों की दुनिया के लिए यह एक बड़ी समस्या है कि वह हमारी दुनिया से संवाद कैसे स्थापित करे।

बच्चों की दुनिया को समझने के लिए हमारे पास क्या स्रोत हैं? क्या बच्चों की दुनिया के डाटा संग्रह मात्र से बच्चों की दुनिया हमें समझ में आ जाएगी? क्या ये डाटा सही ढंग से बच्चों की दुनिया का प्रतिनिधित्व करता है? क्या इसी डाटा से बच्चों की

दुनिया से हमारा संवाद और सामंजस्य स्थापित हो पाएगा? हमें समझना होगा कहीं ये डाटा हमारे द्वारा बचपन पर थोपा हुआ सच तो नहीं है ? उनके मन-मस्तिष्क को रचने में हम और हमारा समाज क्या भूमिका निभा रहा है? ये सारे प्रश्न बच्चों की दुनिया समझने में हमारी सीमाओं को दिखाते हैं। बच्चों की दुनिया के जिस सच को हम समझने का दावा कर रहे हैं, वह हमारे और समाज द्वारा गढ़ा हुआ सच है। हमारी समझ की यह सीमा बच्चों की दुनिया के लिए बड़ा खतरा है।

**समाज में बढ़ती हिंसा,
विघटन और मूल्यों का
क्षय बच्चों की दुनिया
को कठिन बना रहा है।
हमारे वंचित समुदायों
के बच्चों का सपना एक
ऐसी दुनिया है जहाँ वे
पेट भर कर खा सकें,
जबकि संपन्न दुनिया के
बच्चे अकेलेपन का
शिकार हो रहे हैं।**

सोचना होगा। हमारी बदलती पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक संरचनाएँ बच्चों के लिए नित नई चुनौतियाँ खड़ी कर रही हैं। महिलाओं की बाहर की दुनिया में बढ़ती भागीदारी, पुरुषों का नई दुनिया में भी घरेलू जिम्मेदारियों, विशेषकर बच्चों के पालन में भागीदारी की कमी, टूटे परिवार, बाजार के विस्तार और पश्चिमी प्रभाव बच्चों के लिए नित नई चुनौती पैदा कर रहे हैं। बच्चे अकेले होते जा रहे हैं।

बचपन एक सामाजिक निर्मिति है। इसलिए वह समाज की सारी चुनौतियों से अछूता नहीं रह सकता है। आज के दौर में बदलता सामाजिक परिवेश, बाजार, उदारीकरण, भूमंडलीकरण से उपजे सामाजिक द्वंद्व बचपन को प्रभावित

कर रहे हैं। ऐसे में वंचित समुदाय के बच्चों के लिए चुनौतियाँ और बढ़ जाती हैं। क्योंकि एक ओर बाहरी चमक-दमक बढ़ती जा रही है, वैश्विक दुनिया के लिए उनकी तैयारी न होना, तकनीकि ज्ञान में उनका सक्षम न होना, ये सभी कारक मिलकर उन्हें इस दौर में और पीछे धकेलते जा रहे हैं। उनका अपना देशज और सामुदायिक ज्ञान इस नई दुनिया से तादात्म्य स्थापित करने नहीं देता। वर्चुअल दुनिया का असीमित ज्ञान उन्हें भ्रामित करता है। उनके मूल्य परिपक्व होने से पहले ही खंडित होते रहे हैं।



के बच्चों का सपना एक ऐसी दुनिया है, जहाँ वे पेट भर कर खा सकें, जबकि संपन्न दुनिया के बच्चे अकेलेपन का शिकार हो रहे हैं।

बच्चे हमारे समाज का आधार हैं। किसी भी देश के समृद्ध भविष्य की कल्पना बच्चों के सक्षम और सर्वांगीण विकास के द्वारा ही की जा सकती है। इस कार्य में राज्य, समाज और व्यक्ति की बराबर की भागीदारी चाहिए। हम अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन कर रहे हैं? क्या

राज्य महज कानून के निर्माण के द्वारा बच्चों का सर्वांगीण विकास कर सकता है।

बच्चों को सक्षम नागरिक बनाने में परिवार, समाज, शिक्षा की अहम भूमिका है। हम शिक्षा और तकनीकी के नाम पर अपनी भाषा और संस्कृति से दूर हो रहे हैं।

गांधी ने बच्चों के स्वाभाविक विकास पर और अपनी भाषा और सांस्कृतिक जड़ों के साथ शिक्षा की बात की थी। गांधी और टैगोर दोनों ही शिक्षा को नैसर्गिक विकास के रूप में देखते थे। शिक्षा स्थूल विषयों पर केंद्रित न होकर विभिन्न गतिविधियों पर केंद्रित होनी चाहिए। बच्चों को हम शिक्षित करने के नाम पर उन पर अधिक विषयों का बोझ थोप देते हैं। बच्चों की दुनिया नैसर्गिक होनी चाहिए, तभी वे स्वतंत्र रूप से विकसित हो पाएंगे।

(3) हमारे समाज में मौखिक परंपरा बहुत सशक्त रही है।

दादी, नानी की कहानियाँ, उनमें छिपे नैतिक मूल्य हमारे बाल मन को गढ़ने में प्रमुख भूमिका निभाते थे। इनके अलावा, साहित्य के रूप में पंचतंत्र की कहानियाँ बहुत ही लोकप्रिय हैं। वे बच्चों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा बहुत रोचक रूप से देती हैं। इसी शृंखला में हितोपदेश भी अद्भुत कहानियों का संग्रह है। आजादी के बाद उत्कृष्ट बाल साहित्य का प्रकाशन कम होता गया। भारतीय प्रकाशकों को रूस से आए बाल साहित्य की सामग्री से कड़ा मुकाबला करना पड़ा जो रंग, कागज की गुणवत्ता तथा मूल्य में बहुत बेहतर थे।

कृष्ण कुमार ‘बचपन की अवधारणा व बाल साहित्य’

में बताते हैं कि 50–60 और 70 के दशक में आजादी के पहले विकसित हो चुका बाल साहित्य, पल्लवित होने के बजाय मुरझाता चला गया। विदेशी सामग्रियों के बाजार ने हमें आकर्षित तो किया पर हमारे समाज की कहानियों से हम दूर होते गए। चंदामामा, चंपक, नंदन की जगह 'विम्पी किड सीरीज़', 'हैरी पॉटर सीरीज़' ने ले ली। आर.के. नारायन की अद्भुत कृति 'मालागुड़ी डेज' इसी बाजार में उपस्थिति बनाने के लिए संघर्षरत रही, जबकि रस्किन बांड जैसे कहानी लेखक भारतीय बाल साहित्य को लगातार समृद्ध करते रहे। पंचतंत्र, जातक कथाएँ, हितोपदेश के नए आकर्षक ढंग से प्रकाशन के बाद भी यह संकट बना रहा। फिर भी अनेक सराहनीय

प्रयास चलते रहे हैं, जिन्होंने बाल साहित्य को मरने नहीं दिया। आर. शंकरन पिल्लई द्वारा चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट की स्थापना 1957 में की गई। इसके अतिरिक्त एकलव्य, नींव, अमर चित्र कथा, कथा, के प्रयास सराहनीय हैं।



एक महत्वपूर्ण समस्या यह रही है कि स्कूली पाठ्य पुस्तकों में कहानी-कविताओं की उपस्थिति साहित्य के नाम पर बहुत ही आंशिक रही है। पाठ्यक्रम में बाल साहित्य पर जोर कम रहा। उसे मनोरंजन का साधन भर माना गया। हम शिक्षा में बाल साहित्य की भूमिका को नकारते रहे, जिसके कारण एक बड़ी मौखिक और लिखित परंपरा अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रही।

(4) बच्चों की दुनिया को गढ़ने में परिवार और शिक्षा दोनों का महत्व है। परिवार अपनी भूमिका सीमित कर औपचारिक शिक्षा पर बच्चों की दुनिया गढ़ने की जिम्मेदारी डाल देता है। औपचारिक शिक्षा केवल किताबी

ज्ञान का सृजन करने में सहायक हो सकती है, जबकि परिवार बच्चों के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। बच्चों को प्राकृतिक वातावरण में पलने-बढ़ने देना चाहिए। यदि आप एक बच्चे को दबाव में रखकर उसे एक आदर्श खांचे में फिट करना चाहते हैं, तो क्या वह स्वतंत्र रह पाएगा? यदि हम शिक्षा में वास्तव में क्रांति चाहते हैं तो शुरू से ही स्वतंत्रता को महत्व देना होगा। शिक्षक और माता-पिता

सुभद्रा कुमारी चौहान को भी ज्ञांसी की रानी को 'मर्दानी' कह कर ही उनके साहस का गुणगान करना पड़ा। आज 21वीं सदी में भी स्थितियाँ बदली नहीं हैं। छेड़खानी की घटना का लड़की द्वारा विरोध करने पर अखबार में खबर छपती है कि मर्दानी ने शोहदे को पीटा। साहसी लड़की मर्दानी बन जाती है, जबकि छेड़खानी करने वाला पुरुष

को बच्चे की स्वतंत्रता पर जोर देना चाहिए न कि ऐसी शिक्षा पर जो उसके विशेष लक्ष्य प्राप्त करने में मात्र सहायक होगा। (कृष्णमूर्ति)

बच्चे की शिक्षा क्रियाकलापों पर आधारित होनी चाहिए। जहाँ बच्चे अपनी रुचि अभिव्यक्त कर सकें। बच्चों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात हम करते हैं, जबकि उन्हें मूल्यों की शिक्षा देने के नाम पर हम उनपर अपने सपने अपनी आकांक्षाएँ थोपते हैं। हम उन्हें कई बार दुनिया की कठिनाइयों को अपने ढंग से

नहीं देखने देते।

बच्चों को अपने ढंग से सीखने-समझने देने से बच्चों का विकास एक सक्षम नागरिक की तरह होता है। परिवार की सकारात्मकता बच्चों पर बहुत ही अच्छा प्रभाव डालती है। परिवार एक ऐसी यूनिट है, जो बच्चों की गतिविधियों का सूक्ष्म आकलन करके उनकी रुचियों को समझ सकता है। उन्हें सही दिशा में प्रोत्साहित कर सकता है। हम कई बार औपचारिक शिक्षा को बच्चों को एक आदर्श में ढालने

का माध्यम समझते हैं। जबकि शिक्षा औपचारिक ज्ञानवर्धन का कार्य करती है। अनौपचारिक शिक्षा ही बच्चों को जीवन दर्शन समझाती है।

कृष्ण कुमार कहते हैं कि बचपन में हर बच्चा एक क्रम से गुजरता है। इसमें वह अनेक मनोदशाओं से गुजरेगा, क्योंकि वह जीवन के तमाम आयामों को अपने स्तर से छू रहा है। इन मनोदशाओं के तहत विभिन्न अभिरुचियाँ विकसित होती हैं। इनका अवलोकन कर जल्दबाजी में किसी नतीजे पर पहुंचने के बजाय बच्चे के अंतर्मन को समझना परिवार का कर्तव्य है।

परिवार की भूमिका केवल आर्थिक रूप से सक्षम परिवारों

के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि वंचित परिवारों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। उन्हें शिक्षा के महत्व को समझना होगा। बच्चे को एक आर्थिक परिसंपदा न समझ कर, उन्हें एक सक्षम नागरिक बनाने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। गरीब बच्चों के समावेशन के लिए राज्य लगातार ‘भूख-मुक्त शिक्षा’ पर जोर दे रही है। बच्चों की परवारिश के साथ उसमें शिक्षा के लिए उत्साह बढ़ाने का दायित्व भी परिवार पर आता है। शिक्षक और अभिभावक के बीच तादाम्य होना चाहिए। साहित्य और शिक्षा की दूरी घटानी होगी। परिवार की आर्थिक,

सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बच्चों पर गहरा असर डालती है। पर शिक्षक-अभिभावक का संबंध शिक्षक को बच्चों की परिस्थितियाँ समझने में मददगार होगा, तदनुसार उनके पाठ्यक्रम में उनकी रुचियों और जरूरतें समावेशित की जा सकेंगी। हर बच्चे की दुनिया एक जैसी सुंदर और रंगों से भरी नहीं होती।

(5) बच्चों की दुनिया में लड़की होते ही उड़ान छोटी हो जाती है। कुछ जैविक गुणों के कारण बच्चे पैदा होने से



पहले ही हम उन्हें एक ढांचे में देखने लगते हैं। नाम सोचते समय हम उसमें कुछ विशेष गुणों की आकांक्षा करने लगते हैं। साहस, पूर्णता, देवत्व की कामना वस्तुतः शिव, सूरज, शिखर, देवेंद्र, विशाल जैसे लड़कों के नामों में दिखने लगता है जबकि सौम्यता, समर्पण की छवि श्रद्धा, पूजा, शिवांगी, कामना जैसे लड़कियों के नामों में आने लगता है। रंगों की विशालता स्वतंत्रता का प्रतीक नीला रंग लड़कों के हिस्से

चला जाता है, जबकि प्रेम और भावना का प्रतीक गुलाबी रंग लड़कियों के हिस्से आता है। यानी सोचने-समझने की शुरुआत से ही लड़कियों की दुनिया छोटी कर दी जाती है। ये सारे गुण केवल नाम या बाहरी जगत में ही सीमित न रहकर बच्चों का अंतर्मन गढ़ते हैं।



खिलौने के नाम पर भी वंचनाएँ थोपी जाती हैं। हेलीकाप्टर, रेसिंग कार, बंदूक लड़कों के हिस्से में आती है और सुंदर गुड़िया या किचेन सेट लड़कियों के हिस्से में। यहाँ तक कि एनिमेटेड और परी कथाएँ अव्यक्त तरीके से स्त्रैण गुणों का रोमांच गढ़ने लगीं। इन कहानियों की दुनिया में लड़कियाँ एक ऐसी हिरोइन का किरदार निभाती हैं जिसे खुश करने

के लिए लड़के कुछ भी कर जाते हैं। लड़कियों की हर खतरे से सुरक्षा साहसी लड़के ही करते हैं। यहाँ तक कि बच्चों में लोकप्रिय कार्टून कैरेक्टर नेबिता अपनी साथिन सिजुका को खुश करने के लिए हर प्रयास करता है। उस पर मोहित रहता है और शिजुका भी अपने आकर्षण को बनाए रखकर इतराती रहती है। ये सारी चीजें बच्चियों को अपने को वस्तु रूप में देखना सिखाती है। उनका काम सजना, संवरना और समर्पित रहना है।

थोड़ा बड़े होने पर हम बच्चे को साहस का पाठ पढ़ाना

शुरू करते हैं जो छ्या साहस होता है। हमारे पास उनके साहस की प्रशंसा के लिए रूपक नहीं है। सुभ्राता कुमारी चौहान को भी ज्ञांसी की रानी को ‘मर्दानी’ कह कर ही उनके साहस का गुणगान करना पड़ा। आज 21वीं सदी में भी स्थितियाँ बदली नहीं हैं। छेड़खानी की घटना का लड़की द्वारा विरोध करने पर अखबार में खबर छपती है कि मर्दानी ने शोहदे को पीटा।

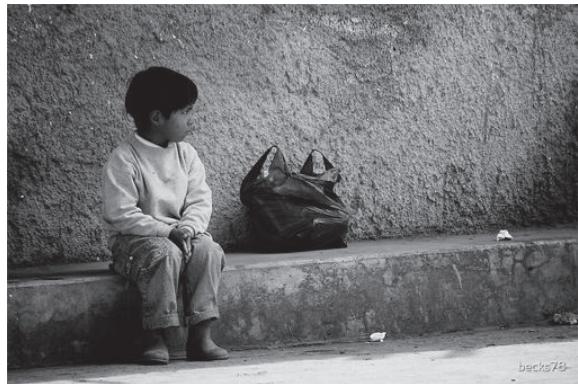
रंगों की विशालता स्वतंत्रता का प्रतीक नीला रंग लड़कों के हिस्से चला जाता है, जबकि प्रेम और भावना का प्रतीक गुलाबी रंग लड़कियों के हिस्से आता है। यानी सोचने-समझने की शुरुआत से ही लड़कियों की दुनिया छोटी कर दी जाती है।

साहसी लड़की मर्दानी बन जाती है, जबकि छेड़खानी करने वाला पुरुष शोहदा! पुरुष से शायद विचलन की उम्मीद नहीं की जाती। ऐसी दुनिया में हम लड़कियों के लिए एक रंगीन बचपन की कल्पना कैसे कर सकते हैं?

माता-पिता के पास बेटियों की प्रशंसा के शब्द नहीं होते तो वे कहते हैं, ‘ये मेरी बेटी नहीं बेटा है।’ ऐसे में बेटी के

बचपन में बेटी बनकर उन्मुक्त सपने देखना थोड़ा कठिन हो जाता है। बदलते परिवेश में हम बेटी को आत्मरक्षा की गुर सिखा रहे हैं, पर उन्हें समाज द्वारा थोपे हुए आदर्श स्त्री की छवि की सीमाओं के जकड़न से मुक्ति नहीं दे पा रहे हैं। इसलिए आधुनिक परिवेश में पली-बढ़ी लड़कियाँ आज भी उस आदर्श छवि को साकार करने की चाहत में खुले आसमान में मुक्त उड़ने के सपने खुल के नहीं देख पाती। उसके सपने, उसकी आकांक्षाएँ और उसकी दुनिया सिमटी रह जाती हैं।

(6) बाल श्रम और शोषण से मुक्ति के लिए हमें अपनी सोच बदलनी होगी। हम उनकी दुनिया नहीं बदल सकते, लेकिन बाल श्रम में लगे बच्चों की सुरक्षा के लिए आवाज उठा सकते हैं। हम उन सभी उत्पादों का बहिष्कार



becks78

कर सकते हैं जिनमें बाल श्रम लगा है। यदि हम इस समस्या की तह में नहीं जाएंगे तो केवल कानूनी प्रतिबंध में से कुछ नहीं हो पाएगा। हमें बाल श्रम में लगे बच्चों और उनके माता-पिता को सपने देखना सिखाना होगा। माता-पिता को उनकी मासूमयित बचाने के लिए प्रेरित करना होगा। उन्हें उनकी आर्थिक तंगी से बचाने के लिए बच्चों को परिसंपत्ति के रूप में देखने से रोकना होगा। उन्हें यह समझाना होगा कि बच्चे उनकी भी मुक्ति का रास्ता हैं और उनके लिए भी अनंत आकाश हैं। हमें नैतिक मूल्यों को केवल अपने बच्चों तक सीमित न रख हर एक बच्चे तक व्यापक करना होगा। ऐसा नहीं है कि इस दिशा में कार्य नहीं हो रहे हैं। नोबेल पुरुस्कार विजेता कैलाश सत्यार्थी का ‘बचपन बचाओ आंदोलन’ जैसे सार्थक प्रयास चल रहे हैं। हमें ऐसे प्रयासों की संख्या बढ़ानी होगी।

बचपन में जब सभी भेदों से ऊपर उठकर हर बच्चे, चाहे लड़का हो या लड़की, अमीर हो या गरीब सबके जीवन में एक जैसे रंग होंगे, तभी बच्चे सुभद्रा कुमारी चौहान की यह कविता अपने बचपन को याद करते हुए दोहरा पाएंगे

चिंता-रहित खेलना-खाना वह फिरना निर्भय स्वच्छंद।
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनंद?

गोबिंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज-211019



देवेंद्र मेवाड़ी

विज्ञान कथाकार और
बालकों को विज्ञान
की कथा सुनाना।

माता-पिता के पास बच्चों के लिए समय नहीं है

हमारी दो आँखों की तरह ही लड़का और लड़की में कोई फर्क नहीं है

(1) बच्चों की आज की दुनिया वह दुनिया नहीं है जो आज से तीस-चालीस साल पहले थी। बहुत बदल गई है बच्चों की दुनिया। जो दुनिया पहले थी उसमें बच्चों के आसपास पेड़-पौधे थे, रंग-बिरंगी तितलियाँ और पक्षी थे। कई तरह के पालतू और जंगली जानवर थे। खेत-खलिहान और फसलें थीं। इतना ही नहीं, समय पर मौसम बदलते थे। नई ऋतुएँ आती थीं और जाती थीं। बच्चे फूलों को देख और छू सकते थे। तितलियों के पीछे भाग सकते थे। वे कोहरे को उठाता हुआ देख सकते थे। आसमान में बादलों को घिरते-बरसते देख सकते थे। वे किताबें पढ़ते थे, खेलते-कूदते थे और प्रकृति में घूम सकते थे। कहाँ गई वह दुनिया?

गांव-कस्बों के बच्चों को भले आज वह बच्ची-खुची दुनिया दिखती हो, लेकिन कंक्रीट के जंगलों में फैले शहरों में बच्चे इन तमाम चीजों से दूर हो गए हैं। उन्हें प्रकृति में मौजूद तमाम चीजों के बारे में कुछ पता ही नहीं है। बीजों को उगाते और पनप कर पेड़-पौधे बनाते हुए देखकर पहले उनमें उनके लिए

थ्यार और लगाव पैदा होता था। आज ये तमाम चीजें उन्हें या तो कक्षा में पाठ की तरह पढ़ाई जाती हैं या वे डिस्कवरी आदि चौनलों के पर्दे की आभासी दुनिया में उन्हें देखते हैं। इससे भला उनमें अपने चारों ओर की प्रकृति से लगाव कैसे पैदा होगा? उनकी दुनिया में अब कई तरह के गैजेट आ गए हैं। वे मोबाइल, वीडियो गेम और टेलीविजन की दुनिया में खो रहे हैं। प्रकृति से कटना मुझे बच्चों की वर्तमान दुनिया का सबसे बड़ा संकट लगता है।

(2) बच्चों की दुनिया ऐसी होनी चाहिए कि जो कुछ



खो गया है, वह उन्हें वापस मिले। इसलिए मैं समझता हूँ कि पहला काम यह होना चाहिए कि उन्हें कक्षा में पढ़ाने के साथ-साथ प्रकृति में जरूर ले जाया जाए। प्रकृति की सैर करना उनका अनिवार्य विषय होना चाहिए। इसके अलावा, बस्ते का बोझ कम करके उन्हें खेलने-कूदने का

भी भरपूर समय मिले। उनकी कल्पना शक्ति को पंख देने और उन्हें प्रकृति से जोड़ने के लिए उन्हें घर में दादा-दादी या माता-पिता कहानियाँ जरूर सुनाएँ। घर में बच्चों की रुचि की किताबें और पत्रिकाएं हों तभी माता-पिता बच्चों में पढ़ने-लिखने का संस्कार डाल पाएंगे।

(3) बच्चों के मन की जिज्ञासा जगेगी ता यह उन्हें आगे कुछ खोजने और जानने की वैज्ञानिक प्रेरणा देगी। इसलिए साहित्य बच्चों के मानसिक विकास के लिए बहुत जरूरी है। मेरे एक बंगाली मित्र बैंक अधिकारी थे। वे कहा करते थे कि अगर बच्चों को बचपन से ही साहित्य पढ़ने को दिया जाए तो वे कभी अपराधी नहीं बनेंगे। उनकी बात मुझे सच लगती है। साहित्य बच्चों को संवेदनशील बनाता है, उनकी भावनाओं को जगाता है। उन्हें सही और गलत को पहचानने की समझ देता है।

(4) परिवार की भूमिका पहले है। परिवार से ही शिक्षा की शुम्भात होती है। इसलिए किसी भी बच्चे का भविष्य गढ़ने के लिए परिवार के लोगों को उनमें सीखने, समझने और पढ़ने-लिखने के संस्कार डालने चाहिए। दुर्भाग्य से

यह शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं का ही चमत्कार है कि भारत से बाहर सुदूर द्वीपों में ले जाए गए गिरमिटिया मजदूरों के बच्चे पढ़-लिख कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते गए और शीर्ष स्थानों पर पहुंचे।

आज की आपाधापी भरी जिंदगी और भौतिक सुविधाओं की दौड़ में ऐसा नहीं हो पा रहा है। शहरों में तो अधिकांश माता-पिताओं के पास बच्चों को देने के लिए समय ही नहीं है। इस कारण बच्चों का अलगाव और एकांत बढ़ता जा रहा है। ऐसी दशा में वे जो कुछ देखते हैं, उसी को मन में बैठा कर आगे बढ़ने लगते हैं। वह अच्छा या बुरा कुछ भी हो सकता है।

(5) लड़का और लड़की दोनों

ही प्रकृति की बेशकीमती सौगात हैं। लेकिन लड़के को घर में प्रमुखता देकर समाज में लड़की को दोयम दर्जा दे दिया गया जो गलत है। प्रकृति की इन दोनों रचनाओं से ही मानव सभ्यता आज यहाँ तक पहुंची है। सबसे बड़ी जरूरत यह है कि घर में लड़का और लड़की को बराबर महत्व दिया जाना चाहिए। दोनों के साथ

एक-सा व्यवहार किया जाना चाहिए। बचपन में लड़का और लड़की दोनों में बहुत अंतर नहीं होता। किशोरावस्था आने पर उनमें शारीरिक परिवर्तन होता है। इसी उम्र में माता-पिता, अभिभावकों और शिक्षकों को लड़का और लड़की दोनों को ही प्यार से समझाना चाहिए कि वे दोनों ही इस दुनिया में किसी भी क्षेत्र में



काम करके नाम कमा सकते हैं। सच पूछिए तो लड़का और लड़की में कर्तव्य अंतर नहीं है, ठीक उसी तरह

जिस तरह हमारी दो आंखों में कोई अंतर नहीं है। यह केवल माता-पिता और समाज की सोच का अंतर है कि दोनों को बराबर महत्व देते हैं या नहीं।



(6) पहला उपाय यही है कि हर बच्चे को शिक्षा और स्वास्थ्य की पूरी सुविधा मिले, फिर चाहे किसी मजदूर का बच्चा हो या अमीर घर का। यह शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं का ही चमत्कार है कि भारत से बाहर सुदूर द्वीपों में ले जाए गए गिरमिटिया मजदूरों के बच्चे

पढ़-लिख कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते गए और शीर्ष स्थानों पर पहुंचे। यह नहीं भूलना चाहिए कि दुनिया के हर बच्चे में संभावना के बीज होते हैं। कोई बच्चा किसी भी क्षेत्र में नाम कमा सकता है और देश का नाम रोशन कर सकता है। इसलिए हर बच्चे को शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ मिलना उसका बुनियादी अधिकार होना चाहिए। बाल श्रम और बच्चों का शोषण दूर करने के लिए कड़े से कड़ा कानून बना कर उस पर कारगर तरीके से अमल किया जाए।

सी-22, शिव भोले अपार्टमेंट्स, प्लाट नं. 20, सैकटर-7, द्वारका फेज-1, नई दिल्ली- 110075, मो. 9818346064 email : dmewari@yahoo.com

कहानियाँ

उर्मिला शुक्ल, शर्मिला जालान,
आयाथुराई सांथन (श्री लंका)



उर्मिला शुक्ल

वरिष्ठ कथाकार।
कहानी संग्रह -
'अपने अपने मोर्चे
पर', 'मैं, फूलमती
और हिंजड़े'।

साल वनों के साये

उसकी जीप ने जैसे ही उस वन खंड में प्रवेश किया,
सब कुछ बदला-बदला सा नजर आने लगा था।
तपती गर्मी से राहत देते साल की हरीतिमा और
उसके फूलों की लालिमा मन मोहने लगी थी। पतली-सी
सड़क के दोनों ओर लगे साल के वृक्षों के साथ -साथ
आम, इमली और जामुन के वृक्ष और उनके गले में
गलबहियाँ डाले बाँसों के झुरमुट। लग रहा था जैसे
हरियाली का एक वितान-सा तन गया हो। जीप से
बाहर निहारती उसकी आँखों को एक सुकून सा
मिला था, वरना अब तक का सफर तो गर्रा -धूँका
से उलझते हुए ही कटा था।

जीप अब सर्पाले रास्ते पर बढ़ रही थी। यहाँ
हिमालय की तरह ऊँची -ऊँची चोटियाँ तो नहीं थीं
और न ही उन पर बर्फाले सौंदर्य की आब थी, मगर
फिर भी सतपुड़ा की ये ऊँची-नीची पहाड़ियाँ मन
को बाँधे ले रही थीं। ऐसे में उसे भवानी प्रसाद मिश्र
की कविता याद हो आई थी -

‘सतपुड़ा के धने जंगल
ऊँधते अनमने जंगल’

वह जब भी इस कविता को पढ़ती, उसका मन
करता वह सतपुड़ा के उन वनों में जा पहुँचे, उनकी
सघनता को अपनी आँखों से महसूसे। सतपुड़ा के
जंगल ही नहीं, वहाँ का जन-जीवन भी उसे अपनी
ओर खींचता रहा है। इसलिए जब उसके



विश्वविद्यालय में ‘जनजातीय समाज और संस्कृति’ विषय पर शोध की योजना बनी, तो उसने अपने शोध के लिए हिमालयीन क्षेत्र को न चुनकर, इस क्षेत्र को चुना था और चल पड़ी थी, इस जंगल की ओर। दिल्ली से बिलासपुर, फिर इस वन-प्रांतर की ओर।

वह जानती थी इस काम के लिए बहुत भटकना पड़ेगा उसे। मगर यह भटकाव मंजूर था उसे। योजना के तहत पाँच गांवों का अध्ययन करना है, मगर मैं अपने को इस संख्या तक ही सीमित नहीं रखूँगी। बैगा! इस जनजाति के विषय में अधिक से अधिक जानकारी जुटानी है मुझे। वह देर तक अपने प्रोजेक्ट के विषय में सोचती रही। फिर अपनी सोच से उबरी तो उसने गौर किया, वनों की सघनता कुछ कम हो चली थी। अब साल और बाँस की जगह मोटे तने वाले पेड़ नजर आने लगे थे, जो लगभग पत्र विहीन हो चुके थे। फिर तो जो हुआ उसकी उसने कल्पना ही नहीं की थी। हवा का एक तेज झाँका आया और उनकी जीप को एक मादक गंध से भर गया। फिर वह गंध जैसे उनके पास ही ठहर गई थी।

‘ये किस चीज की सुगंध है।’ उसने जीप चालक से पूछा।

‘मैडम, ये कच्चे महुए की सुगंध है। इस समय हम महुए के जंगल से गुजर रहे हैं। देखिए न, सड़क के दोनों ओर महुए ही महुए बिखरे हुए हैं।’

उसने बाहर देखा, हल्की-सी हरीतिमा लिए हुए महुए के

सफेद फूलों से पूरी सड़क अटी पड़ी थी और मंद-मंद चलती हवा उसकी मादकता का पैगाम बाँट रही थी। महुए के पेड़ तो उसने पहले भी देखे थे, मगर महुए का जंगल? मीलों तक सिर्फ महुआ ही महुआ, यह मंजर तो

**अब भालू उसे खींचते
हुए जंगल के भीतर ले
जा रहा था और वह
लगातार चीखती जा रही
थी। उसकी चीख सुनकर
जीप चालक दौड़कर
आया और उसने पीछे से
टार्च की रौशनी मारी तो
उसकी आँखें चुँधियार्ही
तो जकड़ भी ढीली हुई।**

कल्पना से भी परे था। उसका मन किया कि वो महुआ बीन कर खाए।

‘जरा जीप रोकिए न!’ उसने चालक से कहा तो उसने साइड लेकर जीप रोक दी।

‘आप मत उतरिए। मैं ले आता हूँ।’

‘नहीं, मुझे खुद बीन कर खाना है’, कहकर वह जीप से उतर पड़ी और सड़क पर पड़े महुए में से ताजे महुए चुनने लगी।

‘अरे सड़क पर पड़ा महुआ मत उठाइए। दिन भर की धूप से इसका रस सूख गया होगा। उधर कुछ

भीतर जाकर, पत्तों पर पड़े महुए बीनिए, उनमें अभी भी रस भरा होगा। मगर जंगल के बहुत भीतर मत जाइएगा। इस मौसम में भालू का खतरा रहता है यहाँ। औरतों से तो जैसे बैर ही है उन्हें।’ उसने कहा तो उसे लगा कि वह यूँ ही डरा रहा है और वह सड़क से कुछ दूर जंगल में भीतर की ओर चली गई। पत्तों के नीचे छुपे महुए वास्तव में ताजे थे। उसने एक महुआ उठाकर मुँह में डाला तो मिठास भीतर तक उतरती चली गई थी। फिर तो उसे याद ही नहीं रहा कि उसे बहुत भीतर नहीं जाना है। अपने स्कार्फ की ओली बनाए वह महुआ चुनती हुई दूर निकल गई थी। तभी किसी ने पीछे से आकर उसे जकड़ लिया, तो डर से उसकी चीख निकली और देर तक जंगल में गूँजती रही। वह उसकी गिरफ्त में छटपटा रही थी, मगर उसकी जकड़ से निकल नहीं पा

रही थी। उसे लगा जैसे किसी पुरुष की ताकतवर बाँहों ने उसे जकड़ लिया हो, तभी उसकी नजर उसके रोएंदार हाथों पर पड़ी और वह फिर से चीख पड़ी थी, मगर उसकी जकड़ कम नहीं हुई थी।

अब भालू उसे खींचते हुए जंगल के भीतर ले जा रहा था और वह लगातार चीखती जा रही थी। उसकी चीख सुनकर जीप चालक दौड़कर आया और उसने पीछे से टार्च की रोशनी मारी तो उसकी आंखें चुँधियार्यों तो जकड़ भी ढीली हुई। फिर तो उसने कस कर जोर लगाया और

भाग खड़ी हुई, मगर भालू अपना खाद्य यूँ ही कैसे छोड़ देता सो अपनी आंखें मलते हुए उसने एक लंबी छलाँग मारी और फिर उसके करीब जा पहुँचा, फिर तो उसे लगा कि अब वह बच नहीं पाएगी।



चालक चिल्लाया - 'आप अपनी ओली का सारा महुआ एक जगह पर उलट दीजिए, महुए के कारण ही यह आपको दौड़ा रहा है।' चालक ने कहा, तो उसने झट से अपने स्कार्फ का सारा महुआ एक जगह पर डाल दिया और तेजी से दौड़ पड़ी। अब वह उसके पीछे नहीं था, पर जीप के पास पहुँचकर भी उसकी हँफनी रुक नहीं रही थी।

'अब डरने की कोई बात नहीं है। वह अब नहीं आएगा। आपने ओली में महुआ रखा था न, इसीलिए उसने आपको पकड़ा था। महुआ बहुत पसंद है इन्हें। इसी के कारण ये लोगों पर आक्रमण करते हैं। देखिए अब वह कितनी शांति से महुआ खा रहा है', उसने कहा। मगर उसका डर इतना हावी था कि उसने उधर पलटकर भी नहीं देखा और जीप में जा बैठी थी। हाथों में कुछ जलन-सी महसूस हुई, तो उसने देखा उसके हाथों पर खरोंच के

निशान उभर आए थे। उसने सोचा- अभी तो मैं सड़क के पास ही थी, तब यह हाल हुआ। मुझे तो अभी जंगल के और भीतर जाना है, तब? तब तो बाघ और तेंदुआ भी मिल सकते हैं। डॉक्टर नेताम ने भी तो चेताया था मुझे- ‘सुदीप्ति जी, आपने अपने रिसर्च के लिए जो इलाका चुना है वह खतरे से खाली नहीं है। कदम-कदम पर खतरा है वहाँ।’

**‘अब ये कोई सहर तो
हय नहीं पहाड़ी रस्ता
हय। जल्दी रेंगेंगे
वोतना ही जल्दी
हबरेंगे। वो डोंगरी
उपर जो गाँव दिखाई
देता हय न हमको
उदर जाना हय।’**

‘सर, आप मुझे डरा रहे हैं?’

‘नहीं, मैं डरा नहीं रहा, चेता रहा हूँ। बहुत सावधान रहना होगा।’

फिर उन्होंने इस इलाके से जुड़ी बहुत-सी बातें बताई थीं। वे इसी इलाके से हैं, पर अब वे यहाँ नहीं रहते। दिल्ली के आकर्षण में बँधा उनका परिवार यहाँ आना ही नहीं चाहता, मगर वे आते रहते हैं यहाँ। यहाँ उनका पैतृक गाँव है। उन्हीं के जरिए गांव के गौंटिया के यहाँ उसके ठहरने की व्यवस्था हो

पाई थी।

शाम होते -होते वह अपनी मंजिल के करीब जा पहुँची थी। यहाँ से आगे का सफर पैदल ही तय करना था। डॉ. नेताम ने कहा था कि गाड़ी गांव तक नहीं जाएगी, मगर वहाँ से कोई उसे लेने आ जाएगा। मगर वहाँ तो कोई भी नहीं था। आस-पास न कोई घर, न ही कोई मानुसजात। विकट समस्या थी। अब उसकी व्याकुलता बढ़ने लगी थी, किधर जाए, किससे राह पूछे? उसके मोबाइल का नेटवर्क भी नहीं था पर जीप वाला भला आदमी था, सो वापस न जाकर अभी भी वहीं खड़ा था। उसने उसके मोबाइल से सरपंच को फोन किया, तो मालूम हुआ कि उन्होंने अपने आदमी को भेजा है। मगर जैसे-जैसे शाम गहरा रही थी, उसका भय भी गहराने लगा था। ऐसे में वह भालू वाली घटना को और याद नहीं करना चाहती

थी, मगर वह बार-बार याद आने लगी थी। तसल्ली की बात यह थी कि जीप वाला अभी भी उसके साथ था।

बहुत देर बाद दूर से आती एक मानव छाया नजर आई, तो उसकी जान में जान आई- ‘बेलापानी जाएगी न?’ उसने आते ही कहा और उसके हाँ कहते ही उसने उसका बैग उठाया और चल पड़ा, तो उसे आश्चर्य हुआ। यह कैसा व्यवहार है! न दुआ-सलाम किया, न ही हाल चाल पूछा! न ही उससे साथ चलने को कहा। सोचती हुई वह कुछ देर तो अकचकायी-सी खड़ी रही।

उसने जीप वाले से कहा- भैया, बहुत धन्यवाद आपका। और वह गौंटिया के आदमी के पीछे चल पड़ी थी।

वह एक सँकरी-सी पगड़ंडी थी, जिस पर बहुत मुश्किल से चल पा रही थी वह। बहुत देर तक चलते चले जाने के बाद भी जब गाँव नजर नहीं आया तब उसने पूछा, ‘भैया, और कितनी दूर है?’

‘अब ये कोई सहर तो हय नहीं, पहाड़ी रस्ता हय। जल्दी रेंगेंगे वोतना ही जल्दी हबरेंगे। वो डोंगरी उपर जो गाँव दिखाई देता हय न हमको उदर जाना हय’, उसने कहा।

उसने इंगित दिशा की ओर देखा, मगर उस पहाड़ पर उसे कुछ भी नजर नहीं आया था, मगर चलना तो था ही। बहुत देर चलने के बाद वे उस नदी के किनारे

जा पहुँचे थे, जो उस पहाड़ के नीचे से होकर बह रही थी मगर उस पर कोई पुल नहीं था। न ही कोई नाव थी। ‘अब ये नदी कैसे पार होगी?’ वह सोच ही रही थी कि उसने सुना, ‘ये नदी बहुत गहरा नइ हय। आप धीरे-धीरे



चलके पार कर लेव।'

उसने नदी की धार को देखा। पानी गहरा तो नहीं था, मगर प्रवाह बहुत तेज था। उसे देखकर भय सा लगा था कि कहीं पैर फिसल गया तो? फिर भी पार तो जाना ही है, सोचकर उसने पहला कदम बढ़ाया पर पैर जमा नहीं पाई और लड़खड़ा गई, मगर गौंठिया के आदमी ने पलटकर उसका हाथ पकड़ लिया था। फिर चट्टानों पर अपने पैर जमाती हुई वह उसके पीछे पीछे चलने लगी थी। मगर उस पौछल पानी में भी इतना वेग था कि वह कई बार लड़खड़ाई थी। फिर भी उसमें चलना अच्छा लग रहा था उसे। इस तरह पैदल चलकर नदी पार करने का पहला अवसर था। एक अलग से कुतूहल मिश्रित आनंद की अनुभूति हो रही थी उसे।

नदी पार करते ही एक पथरीली-सी पगड़ंडी मिली, जो आगे चलकर खड़ी चढ़ाई में बदल गई थी। वह आदमी तो आसानी से आगे बढ़ता जा रहा था, मगर उसके लिए यह राह आसान नहीं थी। कुछ दूर चलकर ही उसका दम फूलने लगा था और वह रुक गई थी। उसने उसे रुके हुए देखा तो कहा, 'जब चल नई सकते तो कायकू आ जाते?' उसके स्वर में कुछ चिढ़ सी झलक आई थी। फिर जाने क्या सोचा और कहा, वो देख जिंहा अँजोर दिखता हय न। बस उहीं जाना हय।' उसने उसकी इंगित दिशा में फिर देखा, मगर उसे कोई रोशनी नजर नहीं आई थी। वह समझ गई कि गांव अभी बहुत दूर है। उस क्षण अपने निर्णय पर पछतावा भी हुआ था। 'काश औरों की तरह उसने भी मैदानी गांव चुने होते।'

मगर अब तो और कोई उपाय ही नहीं था। सो चलना तो पड़ेगा ही। वह कुछ देर थिरायी, फिर चल पड़ी थी। शाम गहरा गई थी। समय बहुत नहीं हुआ था, मगर अंधियारे ने पूरी तरह से अपने पंख पसार लिए थे। बहुत देर बाद दूर पहाड़ी पर क्षीण-सी रोशनी नजर आई, तो उसे तसल्ली हुई।



गौंटिया का घर गांव के बाहर ही था। फूस के छाजन वाले उनके उस घर में छोटी-छोटी कई झोपड़ियाँ थीं। उनमें से एक में उसके ठहरने का इंतजाम था। जमीन में बाँस के चार खूँटे गाड़कर उस पर बाँस की धनी कमचिल इस तरह बिछाई गई थी, जिससे वह एक बहुत सुंदर पलंग-सा नजर आ रखा था। दूसरे किनारे पर इसी तरह से बाँस से बनी छोटी-छोटी दो चौकियाँ रखी थीं। कुल मिलाकर व्यवस्था बहुत अच्छी थी। उसने तो इतनी अच्छी व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की थी।

सब कुछ अच्छा था, मगर एक बात उसे खटक रही थी। गौंटिया ने उसकी व्यवस्था की जिम्मेदारी जिस व्यक्ति को दी थी, उसके चेहरे पर एक अजीब-सी कठोरता थी। उसके हर कार्य में एक निस्पृहता-सी नजर आ रही थी। कमरे में आने के बाद से वह उसके साथ था। उसकी आवश्यकताओं का ध्यान भी रख रहा था, मगर उससे बात तो दूर, उसने उसकी ओर देखा तक नहीं था। उसके हाव-भाव से उसे इतना तो अंदाजा लग गया था कि उसकी उस चुप्पी में संकोच तो नहीं ही है। ‘अगर संकोच होता तो नजरें बचाकर ही सही, एक बार तो उसकी ओर देखता, मगर उसने तो जैसे अपनी नजरों को बरज रखा था। पर क्यों?’

उसे याद आया था उसे लेने गए गौंटिया के उस आदमी ने भी बात करने में पहल नहीं की थी। नदी पार करने में लड़खड़ाने पर ही मदद की थी। उसे लगा कि शायद भाषा की समस्या के कारण ही...। मगर फिर

वह समझ गई थी कि यह भाषा का संकोच नहीं, कुछ और ही है। ‘मगर क्या? वह क्या है जिसने यहाँ के लोगों का वह भोलापन ही निगल लिया, जिसके किससे कहे जाते थे। तो क्या हमारे महानगरों की तरह ये लोग भी....!

मगर गौंटिया ने तो कहा है कि ये ही मेरे साथ रहेगा।
मुझे जहाँ भी जाना होगा, इसके साथ ही जाना होगा !

सो ऐसे अबोलेपन से काम तो चलेगा

नहीं। मुझे पहल करनी चाहिए। मगर कैसे? वह अभी सोच ही रही थी कि तभी वहाँ एक लड़की आई और उसके आते ही- ‘तू फिर आ गिया इहाँ? मना किया था न इदर नइ आना?’ कह कर उस व्यक्ति ने उसका हाथ पकड़ा और उसे तत्काल बाहर ले गया।

और वह ! अकचकाई-सी देखती रह गई ! ‘क्या हुआ है इन्हें? मेरी

जगह कोई पुरुष होता, तो ऐसी एहतियात जायज होती, मगर मैं! मैं भी तो लड़की हूँ! फिर भी उस लड़की को ऐसे दूर ले गया जैसे मैं उसे...?

ये लोग तो ऐसे नहीं थे। इनके यहाँ तो स्त्रियों के लिए कोई बंधन था ही नहीं। बहुत खुलापन था इनके समाज में। इतना खुलापन कि इनके यहाँ कभी सेक्स भी गोपन नहीं रहा। फिर आज ये...? इन्हीं सोचों में घिरी वह देर तक जागती रही, फिर अपने को नींद के हवाले कर दिया था।

सुबह पौ फटते ही उसकी नींद खुल गई थी। रोज सूरज चढ़ते तक सोने वाली सुदीप्ति इतनी जल्दी उठ जाएगी, ये तो कोई सोच भी नहीं सकता था। घर पर भी मम्मी उसे उठा उठाकर थक जाती थीं, मगर दस बजे से पहले उसकी नींद टूटती ही नहीं थी और हॉस्टल में? उसकी रुम पार्टनर? ...वह तो अलार्म के समय मोबाइल का स्पीकर ऑन करके उसके कान के पास ही रख देती,

तब कहीं जाकर वह बिस्तर छोड़ती थी ।

मगर आज तो कमाल ही हो गया था, किसी के उठाए बिना ही वह उठ गई थी । उसने बाहर निकल कर देखा, तो सामने की पहाड़ियों पर बादल झुके चले आ रहे थे । कभी वे सघन हो कर पहाड़ियों को ढँक लेते, तो कभी हवा उन्हें अपने साथ उड़ा ले जाती । फिर कुछ ही देर में पूरब में सुरमई उजाले की एक फाँक सी नजर आई और साल के झुरमुट में बैठी किसी चिड़िया ने कहा टीयूँ । कुछ अंतराल पर फिर उसकी आवाज गूँजी टीयूँ । तब तक पूरब के आकाश में एक लाल रेखा उभर आई थी ।

फिर तो एक से दो, दो से तीन और फिर अनगिन चिड़ियों के समवेत स्वर गूँज उठे थे और उसे सुमित्रानंदन पंत याद हो आए थे । ऐसे ही किसी पल में तो रची गई होगी

उनकी ये कविता- ‘प्रथम रश्मि का आना रंगणि तूने कैसे पहचाना!’ ‘सचमुच कितना चकित करता है ये सब । इनके पास न तो कोई अलार्म है और न ही कोई जगाने वाला, फिर भी...! कैसे जान लेती हैं



ये कि अब भोर होने वाली है! सोचती हुई वह प्रकृति के उस सौंदर्य में खोई हुई थी कि-

‘चहा !’ आवाज इतनी रट्ठ थी कि उसे लगा, मानो सौंदर्य की नदी में बहते-बहते, कोई शिला ही टकरा गई हो । पलटकर देखा तो चाय का गिलास लिए रात वाला व्यक्ति खड़ा था । उससे बोला गया उसका यह पहला शब्द था । रात के अंधेरे में वह जो देख नहीं पाई थी, मगर अब वह प्रत्यक्ष था । उसने देखा उसका चेहरा शिला-सा सख्त था और आंखें निस्पृह लग रही थीं । उनमें एक दबा-दबा आक्रोश भी था । उसने उसे ऐसे दबा रखा था जैसे गोरसी में आग दबा दी जाती है और

उसके पीछे, कुछ दूर खड़ी थी वह लड़की जो उसे ही देख रही थी ।

सुदीप्ति ने हाथ बढ़ाकर चाय का गिलास थाम लिया और ‘यह तुम्हारी बेटी है? बड़ी प्यारी है। क्या नाम है इसका?’

पर उसने उसकी बात सुनकर भी नहीं सुनी थी । ये साफ-साफ उपेक्षा थी । मगर वह चाहती थी कि उस लड़की से संवाद की स्थिति तो बने, सो- ‘चाय इतनी अधिक है कि इसमें हम दोनों पी सकते हैं । जाओ एक गिलास और ले आओ ।’ उसने उस लड़की से कहा ।

मगर बिना कुछ बोले ही वह उस लड़की को लेकर वहाँ से चला गया और अपने पैरों की धप-धप से जता भी दिया था कि उसे उसकी ये बात पसंद नहीं है ।

यह उसके रिसर्च का पहला दिन था । चाय अच्छी थी, मगर गिलास बहुत गर्म था । सो पहला धूँट भरने की कोशिश में ही ओंठ जल गए थे, मगर चाय तो पीनी ही थी । सो उसके ठंडी हो जाने का इंतजार था उसे । उसे इंतजार तो उसका भी था

जिसके साथ उसे गांव में जाना था । तैयार होकर वह देर तक उसके इंतजार में बैठी रही । जब वो दिन चढ़ने तक भी नहीं आया तब वह अकेली ही चल पड़ी थी ।

गांव तो आम आदिवासी गांव की तरह ही था । यानी दूर-दूर बसी गिनी चुनी झोपड़ियाँ थीं, मगर उस समय वे सब खाली थीं । गांव के सब लोग जंगल जा चुके थे । ये महुओं का मौसम था । सो औरतें भोर से पहले ही जंगल चली जाती थीं, जो पहले पहुँचतीं वे पक्की सड़क के किनारे के पेड़ पोगरा लेतीं (अधिकार जमा लेतीं) । साफ सुथरी सड़क पर महुआ बीनने में आसानी होती थी, इसलिए पहले पहुँचने की होड़-सी रहती थी । सो

ये इलाका तो शांत
माना जाता है । जल,
जंगल और जमीन
जैसे आंदोलनों में भी
शामिल नहीं है ये ।
फिर? ये
दबी-दबी-सी आग?
ऐसा क्या हुआ,
जिससे इस कदर
बदल गए हैं ये ।

अधिकांश घरों में छोटे बच्चे और मुर्गियाँ ही मिली थीं उसे। कुछ झोपड़ियों में सियानिन भी मिलीं। मगर वह जिससे भी बात करने की कोशिश करती वह पहले तो कुछ देर तक उसे धूरती, फिर बच्चों को लेकर झोपड़ी के भीतर चली जाती।



उसने पढ़ रखा था कि इस इलाके के लोग बाहरी लोगों से डरते हैं। उनसे डर कर वे जंगल में छुप जाते हैं, मगर उसे उनकी आँखों में जो नजर आया था, वह डर तो नहीं ही था। वह तो बिलकुल वैसा ही भाव था, जैसा उस व्यक्ति की आँखों में था। गोरसी में दबी आग-सा दबा-दबा-सा आक्रोश।

ये इलाका तो शांत माना जाता है। जल, जंगल और जमीन जैसे आंदोलनों में भी शामिल नहीं है ये। फिर? ये दबी-दबी-सी आग? ऐसा क्या हुआ, जिससे इस कदर बदल गए हैं ये। सोचती हुई गाँव की बसाहट से बाहर निकल गई थी वह। उधर कोई घर नहीं था। उधर पहाड़ भी बहुत ऊँचे नहीं थे। बस कुछ छोटे-बड़े टीले थे, जिसके उस पार से घने जंगल की हरीतिमा नजर आ रही थी। जो हो रहा था, उसके चलते उसका मन थिर नहीं था। कोई था भी नहीं, जिससे कुछ कह सुन कर मन हल्का करती। ऐसे में प्रकृति ही एकमात्र सहारा थी। सो वह उधर ही बढ़ चली थी। कुछ दूर चलने के बाद एक टीले पर उसे एक परछाई-सी नजर आई, तो वह उधर बढ़ चली थी।

जैसे-जैसे वह टीले के करीब होती गई, वह परछाई स्पष्ट होने लगी थी। अब उसे साफ नजर आ रहा था टीले पर कोई लड़की बैठी थी। उसके लंबे बाल हवा में फहरा रहे थे।

पास जाने पर ज्योति ने देखा कि उसके कपड़े आदिवासियों से एकदम अलग थे। उसने एकदम नए

चलन की कुरती और लांग स्कर्ट पहन रखा था। उसकी निर्निमेष नजरें जंगल की गहनता में खोई हुई थीं। चारों ओर हरे भरे जंगल, बीच में वो पठार सी पहाड़ी और उस पर खूबसूरत पेंटिंग सी थी वह।

‘क्यों न इस दृश्य को यादगार बना लिया जाए’ सोचकर वह उसके पास जा पहुँची। मगर उसने जैसे ही कैमरे का फ्लैश चमकाया, उसने झपट कर उसे पकड़ लिया और— ‘तू आ गिया न। देख मझे तेरा बात मान लिया। तू जइसा कहेगा मय वाइसा करेगी। मय बइठेगी तेरे संग। आ न! आ।’ कहते हुए उसने अपनी स्कर्ट नीचे सरका दी और ‘आ न! मय बइठेगी तेरे संग।’ जोर जोर चिल्लाते हुए इशारे करने लगी थी। वे इशारे जिसे तथाकथित सभ्य समाज अश्लील कहता है। मगर सुर्दीप्ति अश्लीलता के उत्स को देख कर ग्लानि से गली जा रही थी। वह देख रही थी, उसकी कमर से नीचे के उन जख्मों को जो अब नासूर बन चुके थे। कुछ देर के लिए तो वह कटुआइ-सी खड़ी रही, फिर दौड़कर उसके पास गई और उसके कपड़े व्यवस्थित करने की कोशिश की, तो

**महानगरों और अरब देशों
में सक्रिय देह तस्करी का
गिरोह यहाँ तक आ पहुँचा
है। वह भी रिसर्च की
आड़ लेकर..। शायद
इनके बीच रहने के सबसे
आसान तरीके हैं रिसर्च
और एन.जी.ओ.।**

वह और जोर-जोर से चीखने लगी। फिर उसकी चीखें रुदन और रुदन से सिसकियों में बदल गई थीं। ज्योति को अब लोगों के व्यवहार का कारण समझ में आ गया था। वह समझ गई थी कि यह सब उस असभ्य समाज की ही करतूत है, जो अपने को सभ्य कहता है। जिसके लिए औरत कभी ट्राफी होती है जिसे वह अपने पैसे और रुतबे से हासिल करता है। या फिर वह शिकार होती है जिसे वह अपने जाल में फाँसता है। ‘इसे भी ऐसे ही किसी शिकारी ने फाँसा होगा।’ यह सोचते हुए उसने उसे अपनी अँकवार का सहारा देकर उठाया ही

था कि पीछे से आकर दो मजबूत हाथों ने उसे उससे छुड़ा लिया ।

और – ‘चल हट इदर से । दूर रह अमारी लेड़की लोग



से । सुबो से तेरे कू समजा रहे फेर बी तू समजती नहीं ।’ कहते हुए अब वही व्यक्ति उसके सामने था । उसकी आंखों

की गोरसी में दबी आग अब दहक में बदलने को आतुर थी ।

‘मैं सब समझ रही हूँ । आपका ये गुस्सा जायज है । मैं मानती हूँ हमारी पुरुष सत्ता यानी हमारे आदमी लोग अपराधी हैं, उन्होंने आप लोगों... ।’

‘ये बस रहिने दे । ये जो इसका हालत हय न । ये आदमी ने नहीं किया । ये सब तुम्हारा जइसा ओरत ने किया है । तुम्हारा जइसा ही पढ़इ करने कू आया था ओर अमारा लेड़की लोग कू अपना संग ले गिया । वो वो कइसे बी तो करके अमारा डीह बबा ने मेरा लेड़की लहुटा दिया नह त वो बी बाकी लेड़की लोग जइसा...? सब कउन जाने कइसा होयेंगा... ।’ उसने यह कहा तो सुदीप्ति की आंखों में अखबारों के कई पन्ने फड़फड़ा उठे थे ।

महानगरों और अरब देशों में सक्रिय देह तस्करी का गिरोह यहाँ तक आ पहुँचा है । वह भी रिसर्च की आड़ लेकर ... । शायद इनके बीच रहने के सबसे आसान तरीके हैं रिसर्च और एन.जी.ओ. ।

मौजूदा दौर में रिसर्च वैसे भी आसान तरीका है! अगर इसमें कोई महिला शामिल हो, तब तो शक की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती । महिलाओं पर हमारा छलछंदी समाज भी विश्वास कर लेता है । फिर ये सीधे-सादे लोग हैं । यह सोचते हुए उसकी नजरें उठीं, तो उसने देखा उस आदमी की आंखों की कोर में आंसू की बूँदें अटकी

हुई थीं। इससे पहले कि वे चूं पड़ें उसने इन्हें थाम लिया। फिर –

‘न न ! ये आँसू नहीं बहाना है। रोक लो इनको। यूँ रोने से तो गोरसी की आग बुझ जाएगी। उसे बुताना नहीं है और दहकाना है इसे। दहक इतनी तेज हो कि...’

‘तुम सही बोलती। अम बी, अम सब्ब लोग का मन करता हय के ये आगि में उन लोग कु भूंज दे। अपना पुरखा लोग जइसा बान चलाके मार दे उनकू, जो अमरा लेड़की लोग का अइसा...’ कहते हुए उस आदमी की आंखों की आंच बढ़ी मगर, ‘गौंटिया बोलता अमकु अइसा नइ करने का। अइसा करने से दूसरा सब जंगल जइसा अमारा जंगल बी जलने लगेगा। इसी खातिर अम खमोस हय। नइ त...।’

‘ठीक कहते हैं वे। मैं भी नहीं चाहूँगी कि आग इतनी दहके कि जंगल ही झुलस जाए, पर आग इतनी तो हो कि जानवर डर जाएं। जानवरों को भगाने के लिए आग जखरी है न?’ सुदीप्ति ने कहा।

उसे बाबा याद हो आए थे। वे अक्सर उस घटना का जिक्र किया करते थे, जब गांव में बाघ धुस आए थे। गांव के लोगों ने तब किस तरह लुकाठी जलाकर उन्हें गाँव से बाहर खदेड़ा था।

‘ये एकदमे सही कह रही हय। जिनावर को खेदारने के खातिर आगि त बहुते जखरी हय।’ यह कहते हुए उसकी आंखों की आंच और बढ़ गई!

ए-21 – स्टील सिटी अवंती विहार, रायपुर – 492001, छत्तीसगढ़
मो. 9893294248



शर्मिला जालान

युवा लेखिका। 'शादी से पेशतर' (उपन्यास), 'बूढ़ा चाँद', 'राग-विराग और अन्य कहानियाँ' और 'माँ, मार्च और मृत्यु' (कहानी संग्रह)।

मूनलाइट सोनाटा

(एंटोन चेखव की याद में)

उसे कोई पुकारता है

उसे कौन पुकारता है?

दुख

वह कहीं रहती है

वह कहाँ रहती है?

वह दुख में रहती है

दुख में कितने अक्षर हैं?

दुख के शब्द रूप क्या-क्या होते हैं?

दुख क्या एकवचन है?

दुखानि बहुवचन ?

यह सब कोई बताएगा

वह कोई कौन है?

उसके हर दिन एक जैसे ही लगते हैं

दुख के दिन एक जैसे ही होते हैं।

अलीपुर का इलाका। घनी आबादी से दूर। हरियाली और खुला आसमान। सितंबर महीने की बारिश। बेलवेडियर रोड के एग्री हॉटिकल्चर गार्डन को यह बरसात भिगो और ढुबो रही है। यह ढुबो रही है चिड़ियाघर को। वहाँ के परिंदे और जानवर, वहाँ के पेड़ और पोखर, वहाँ की

*मूनलाइट सोनाटा जर्मनी के शास्त्रीय संगीतकार लुडविग वान बीथोवेन का प्रसिद्ध सोनाटा है जो अपनी वैयक्तिक कलात्मक अंतर्दृष्टि के लिए जाना जाता है।

मछलियाँ, कछुवे, शैवाल, वहाँ के क्वार्टर, कॉफी और स्नैक्स की दुकान और गुमटियाँ पानी में भीग रहे हैं। वहाँ के कर्मचारी अंदर बैठे बाहर बरसते पानी को देख रहे हैं। पास ही है नेशनल लाइब्रेरी, वह इस बारिश में भीग रही है। पूरा कलकत्ता सारी रात पड़ते पानी में भीग रहा है। नेशनल लाइब्रेरी में बैठा कोई लेखक किताब में झुका बेलवेडियर रोड के दस मंजिला इमारत के छह तल्ले में रहनेवाली एक स्त्री के दुख को पढ़ रहा है। पूरी दुनिया अपने काम में उलझी-लिपटी है, सबके अपने-अपने पसारे। उन सबके बीच एक दरम्याने कद का लेखक बच्चों और युवा, वरिष्ठ और बूढ़ों की कहानी न लिख स्त्री के दुख को पढ़ रहा है। उसकी आंखें बहुत पैनी हैं। उसके पन्नों पर स्त्री का दुख उत्तर आया है।



श्यामा अपने कमरे में बैठी लेखक के पन्नों पर झुके रहने को महसूस कर रही है। वह दहलीज तक जाती, फिर कमरे में लौट आती। खिड़की से हल्की सी कायं की और परों की फरफराहट सुनाई देती। कमरे की सभी आवाजों से वह अच्छी तरह परिचित थी। दायरा बड़ा नहीं था उन आवाजों का। कभी-कभी पंखा चलने पर होनेवाली आवाज। पड़ोस के किसी घर में बढ़ई के काम करने की आवाज। पर इन आवाजों से अलग है उसके अंदर की कोई आवाज। उसे लग रहा था उसके इलाके में कोई उस आवाज को सुन रहा है।

हर रात आती, चली जाती और दिन भी बीत जाते। बारिश होती रहती, बादल गरजते रहते और बिजली ऐसे कड़कती जैसे कहीं गिरी हो। लगातार नेशनल लाइब्रेरी के ऊपर मूसलाधार पानी पड़ता रहता। पानी चिड़ियाघर पर भी पड़ता। पानी इस इलाके की सुनसान सड़कों पर पड़ता। हॉर्टिकल्चर पर आसपास के बंगलों व इमारतों पर। चारों तरफ पानी ही पानी। ऐसा लगता, पूरा इलाका ढूब रहा है। वह ढूब रही है। उसमें कुछ तैर

रहा है। वह है दुख। उनका दुख टिमटिमा रहा है।

श्यामा हर रोज नेशनल लाइब्रेरी के मैदान में चक्कर लगाती। वह वहाँ की लाइब्रेरी में घूमती। उस लेखक को खोजती, जिसने उनके दुख को पढ़ा है।

वह बार-बार लाइब्रेरियन से पूछती-

‘यहाँ पर कोई लेखक है। एक लेखक जिनकी कद-काठी ऐसी है और नैन-नकश ऐसे।’ लाइब्रेरियन हर बार बहुत गंभीर हो उसे लौटा देते –

‘नहीं। यहाँ ऐसे कोई नहीं आते हैं।’ ऐसा कह वे कन्खियों से उसकी तरफ देखते हैं।

‘आप झूठ बोल रहे हैं। वह आते हैं।’ वह रुआंसी हो कहती है।

उसे पता है, वे आते हैं। वह उनके लिए रोज आती। कभी-कभी चिड़ियाघर चली जाती। एक परछाई के पीछे। अचेतन मन पैरों को खींचता जाता। वह दोपहर में चिड़ियाघर भी आते और चिड़ियाँ देखते हैं। वहाँ के लोगों से पूछती – ‘क्या एक लेखक आया था? जिसने बैंच पर बैठ परिंदे को देखा था। जो धंटों गर्भिन बाधिन को देखा करता। उसने मेरे दुख को समझा था। उनसे मिलना है।’

‘यहाँ कोई लेखक नहीं आया।’ –फिर वही उत्तर। जवाब देनेवालों के अंदर कुछ नहीं पिघलता।

‘ऐसा कैसे हो सकता है! – उसकी आंखें स्थिर हो जाती हैं। वह मन ही मन लगभग चीखती हैं। वह हर बार लौट कर अपने कमरे में आती। उसी कमरे में जिसमें वह वर्षों से है। यह कमरा बहुत पुराना है, जितनी पुरानी नेशनल लाइब्रेरी है। लगभग डेढ़ सौ साल। उसे लगता बारिश की ठंडक उन्हें परेशान कर रही है। ठंडक नहीं, कोई गंध है जो उसे ठीक से सांस लेने नहीं दे रही। वह गंध हर चीज से आ रही है। उस कुर्सी से जिस पर वह बैठी है, कपड़ों से, फर्श से, पलंग से, अपने आप से, इस पुराने कमरे से।

जब वह अपनी लाइब्रेरी की उम्र वाले कमरे में आती है, उसे

लगता है कहीं कोई किताब पर झुका हुआ उसके दुख को पढ़ रहा है। वह दुख जो अनंत काल से उसके अंदर पसरा हुआ है। जो उसके अंदर मटमैली काई की तरह फैल जाता है। जिस पर सालों से कोई हरी धास नहीं उगी, पर उसे विश्वास है कि वहाँ कुछ फूटेगा। वह लेखक, जिसे उसने न देखा न सुना, वह उसके अंदर आकाशगंगा की तरह है। और उसे यह लगता है कि वह लेखक उस तक पहुंचा है। इस संसार में किसी ने उसे नहीं समझा। कोई उसे समझ भी नहीं सकता। उसके तबीयत में एक जिद्द थी। उसके विचार नए या दूसरों से भिन्न थे.. इसलिए उसका किसी से समझौता न हो सका। वह अकेली रही। प्रतीक्षा करती हुई। किसी ने उसमें कोई ऐसी खूबी नहीं देखी कि वे उसे असाधारण महत्व देते। वह यह सोचती है दुनिया में उसका होना या न होना कुछ भी महत्व नहीं रखता और वह पहले से



ज्यादा अकेली हो जाती। उसे लगता वह दुख से नहा गई है। वह क्या करे! उनकी आंखों में जो तारे हैं, वे चमकने लगते। उसे लगता है, वह जब उस लेखक से मिलेगी तब उसे सब कुछ कहेगी। उनका दुख बह जाएगा। तूफान थम जाएगा।

वह लेखक द्वारकानाथ टैगोर के पुत्र रवींद्रनाथ नहीं हैं जो जोड़ासाँको में बैठे अपने पन्नों पर ‘नष्ट नीड़’ कहानी लिख रहे हैं। नहीं, वह टॉलस्टॉय भी नहीं है जो ‘अन्ना कारेनिना’ लिख रहे थे। दोस्तोवस्की भी तो नहीं है, जिसे युवा दिनों में उसने पढ़ा था। वह कोई और है। उसके जैसा।

उसने स्कूल के दिनों में एक कविता पढ़ी थी।

उसने स्कूली दिनों में एक कहानी पढ़ी थी।

उसने स्कूल के दिनों में एक नाटक पढ़ा था।

उसे पता है कि वह कविता, कहानी, नाटक लिखने वाले दुख को पढ़ते हैं। उसकी आंखों में जो तारे हैं वह उस लेखक के

मन की आकाशगंगा में चमकते हैं। उसे स्कूल के दिनों से उस लेखक, कवि, नाटककार का इंतजार है जो आएगा। जो नेशनल लाइब्रेरी में बैठा पन्नों पर झुककर कुछ पढ़ रहा है। जिसके मन में कई मन है। और जो उसके दुख पर हाथ रख रहा है। वह नेशनल लाइब्रेरी जाती। वहाँ चक्कर लगाती। बार-बार पूछती – लेखक आए?

इन वर्षों में दो-तीन लाइब्रेरियन बदल गए। उसके अपने चेहरे में भी इन सालों में बदलाव आ गया। आँखों के नीचे का कालापन बढ़ गया है। कोई भी उसे बता नहीं पा रहा कि वह लेखक आए थे या नहीं। एक ने कहा-

**मन में जो बात आती है
उससे मैं चमत्कृत हो जाता हूँ। यदि मन की वह बात
लिख सकता तो आज
कितना बड़ा लेखक होता।
दुनिया में कितनी कद्र
होती। मेरे नाम लोगों के
कितने पत्र आते। जहाँ
जाता लोगों की आँखें मेरी
तरफ उठ जातीं।**

‘हाँ, लेखक आए हैं’ वह भाग कर रीडिंग रूम में जाती हैं। वहाँ कई लेखक हैं। पर उसकी आकाशगंगा में जो लेखक है वह कोई और है। वह अपने कमरे में लौट आती।

वह वर्षों से आ रही है। एक दिन एक नए लाइब्रेरियन भवेश सिंह ने उनका हाथ पकड़ उसे फिर से लाइब्रेरी में चारों तरफ घुमाया। वहाँ बैठे सभी लेखकों के पास लेकर गया और पूछा-
‘ये हैं?’

एक लेखक जो रिटायर्ड पत्रकार मालूम पड़े, उनके पास वह रुक गई।

वह किसी किताब में ढूबे हुए थे। वह उनकी तरफ लगातार देखने लगी। लेखक ने किताब से अपनी आँखें हटा कर ठोड़ी ऊँची कर कहा- ‘अनुवाद कर रहा हूँ।’ कुछ मिनट रुक कर वे बोले- ‘आप नहीं जानती। नहीं-नहीं तो भी तीस-बत्तीस कहानियाँ मैंने लिखी हैं। एक पूरा उपन्यास लिख रखा है। कम से कम दो सौ पच्चीस पन्नों का तो होगा ही। एक दौर था दिल्ली का जब बड़े-बड़े लेखक, कवि, साहित्यकार कॉफी शॉप में खूब आते थे। उन दिनों पर पूरा उपन्यास लिखा है मैंने।’

‘एक प्रकाशक को दिया था...।’ फिर कुछ नाराज होते हुए बोले-उसने साल भर पेंडिंग रखा, फिर खत लिखा- छपने में समय लगेगा।’ मैंने कहा - ‘मेरी पांडुलिपि वापस करो। भवेश जानते हैं। उन्होंने मेरे अनुवाद पढ़े हैं। मेरी प्रिय लेखक की कहानियाँ’ - श्यामा उन्हें सुन रही थी। उसे उनका चेहरा गुस्से में मरी हुई मुर्गी की तरह लटका हुआ लगा। उनकी आंखें जिस तरह झपक रही थीं, लग रहा था हर चीज का गिला आंखों में है और जैसे कोई प्रतिशोध लेना हो।

श्यामा को अपनी तरफ देखते हुए देख वह कुछ सोचकर बोले- ‘आप तो लिखती हैं, आप मेरी बात जरूर समझेंगी।... जानती हैं- मन में बहुत कुछ धुमड़ता है। उसे यदि बाहर व्यक्त कर सकूँ तो वह महान रचना का रूप ले सकती है। मन में जो बात आती है उससे मैं चमत्कृत हो जाता हूँ। यदि मन की वह बात लिख सकता तो आज कितना बड़ा लेखक होता। दुनिया

में कितनी कद्र होती। लोगों के कितने पत्र मेरे नाम आते। जहाँ जाता लोगों की आंखें मेरी तरफ उठ जातीं। लोग आकर हस्ताक्षर मांगते। होता यह है कि मन की बात कागज पर उतरती ही नहीं। वह बात जो बहुत बड़ी और महत्वपूर्ण लगती, लिखने पर साधारण लगने लगती है।’ श्यामा



का चेहरा ‘हाँ’ में हिला। वह उनकी बातों को बहुत ध्यान से सुन रही थी, बोलीं- ‘आप ठीक कह रहे हैं।’ ओह! आप मेरी बात समझ रही हैं।’ इस एक बात से श्यामा उनको काफी परिचित लगने लगी। उनकी आंखों में चमक आ गई, वे बोले- ‘आप अपनी कोई चीज कभी पढ़ने को दीजिएगा। मैं कुछ लेखिकाओं से उनकी रचना प्रक्रिया पर बात करना चाहता हूँ।’ श्यामा की आंखें पल भर के लिए फैलीं। बहुत सहज हो कर बोलीं- ‘बहुत साधारण लिखा है मैंने। पढ़ाने लायक नहीं है।’ ऐसा कह वह उन्हें प्रणाम कर वहाँ से उठ गई।

मिस्टर सिंह को श्यामा की आंखों, होठों के कंपन और चेहरे के उतार-चढ़ाव से यह समझ में आ गया कि ये वह लेखक नहीं, जिन्होंने उनके दुख को समझा था। ये लेखक तो हैं पर जिनको वह खोज रही वे कोई और हैं।

मिस्टर सिंह बोले- ‘ये देश की आर्थिक स्थितियों की रिपोर्टिंग वर्षों करते रहे हैं। इसी बीच इन्होंने अपना कुछ लिखा है। आजकल अपने प्रिय रुसी लेखक का अनुवाद कर रहे हैं। कभी-कभी इनका लिखा कुछ छप जाता है।’

ऐसा कह कर वह आगे बढ़ रहे थे कि एक लड़की उसके पास आई और बोली- ‘मुझे क्या आप मणि शंकर मुखर्जी का उपन्यास ‘चौरंगी’ खोज कर दे पाएंगे?’ मिस्टर सिंह उसे देख उत्साहित हो बोले- ‘अरे शालिनी आप! बहुत दिनों के बाद आई? कैसी हैं?’ शालिनी ने चश्मा ऊपर करते हुए कहा- ‘आपको बताने का समय नहीं मिला, हमारे स्कूल से इंटर स्कूल कॉम्पिटेशन के लिए मैं ‘उड़ान उच्चतर माध्यमिक विद्यालय’ गई थी।’

‘वाह! यह सुनकर अच्छा लगा। अब्बल आई होंगी आप तो। पर आप पहले इनसे मिलिए। ये श्यामा जी हैं।’ मिस्टर सिंह ने परिचय करवाया। श्यामा मुस्कराई, बोली- ‘हलो।’

शालिनी ने भी कहा- ‘हलो।’

‘श्यामा जी, शालिनी का कहानी संग्रह पिछले साल कलकत्ता पुस्तक मेले में आया था। लेखिका हैं।’

श्यामा ने उसकी ओर देखा, बोली- ‘रियली।’

‘...और नहीं तो क्या! आप खुद अपने बारे में कुछ बताओ।’
-मिस्टर सिंह बोले।

‘...मैम, ऐसा कुछ नहीं है। वह मैने कुछ कहानियाँ लिखी हैं।’ ऐसा कह वह उनके पास बैठ गई।

‘कितनी?’

‘पच्चीस।’ -वह हँस पड़ी।

‘कब से लिख रही हैं?’ -अपनेपन से श्यामा ने पूछा।

‘कक्षा पांच में थी ..तब से।’ ऐसा कह वह सकुचा कर चुप हो गई और हँसने लगी। लाहलहाती हँसी।

‘अब किस कक्षा में हैं?’

‘बारहवीं’

‘क्या लिखती हैं?’

‘वह तो आपको पढ़ना पड़ेगा। पर लड़कियों के जीवन पर।

मेरी एक बिल्ली है उस पर। मेरी कलम, मेरा कुत्ता और पढ़ाई का दबाव अमेरिकन फिल्में और अमेरिकन नॉवेल पढ़ने वाली लड़कियाँ। नेट फिलिक्स पर अपने फेवरिट सीरियल देखती लड़कियाँ, मोमो और केक खाती लड़कियाँ ...तरह-तरह की लड़कियाँ। बहुत कुछ मैम। आप जरूर पढ़िएगा।’ उसका

बोलने का अपना लहजा था। उसने एक कार्ड निकाल कर श्यामा को दिया और बोली- ‘यह मेरे पब्लिशर हैं। एक फाउंडेशन है मैम, जो स्कूल के छात्रों की किताबें प्रकाशित करता है।’ वह श्यामा को और भी बातें बताने लगी।

श्यामा का ध्यान उस पर गया। गोरा रंग। नाटी। छोटे-छोटे लड़कों की तरह के बाल। स्लिम स्मार्ट एंड प्रेटी। पीठ पर बैकपैक है। वह कुछ देर चुप रहने के बाद मिस्टर सिंह की तरफ देखते हुए बोली- ‘सर, आपको पता है! पिछले महीने सेंत जेवियर्स में जो क्रिएटिव राइटिंग कॉम्पीटिशन हुआ था

उसमें कलकत्ता के ऊपर लिखी मेरी कविता को प्रथम पुरस्कार मिला था और एक संपादक, जब मैं जाने लगी, पीछे से पुकारने लगे, मेरे पास आए और बोले- ‘अपनी कविता हमारी पत्रिका में भेजिएगा।’ पर इस बार ‘उड़ान’ में जो गई थी, उन लोगों ने अपने स्कूल के एक खराब पोएट को पुरस्कार दे दिया। निराश हो कर बोली, बताइए सर, कभी ऐसा भी होता है! अपने ही छात्रों को पुरस्कार देना था तो हमें क्यों बुलाया।’

श्यामा उसकी बातें सुनने के बाद उठ कर जाने लगी तभी शालिनी ने संकोच के साथ धीरे से कहा- ‘आंटी, क्या आप मुझे दस रुपये देंगी। प्लीज। लौटा दूंगी।’

श्यामा ने अपने पर्स से बीस का नोट निकाला, बोली – ‘रख लो, लौटना नहीं होगा।’

शालिनी चली गई। उसकी चाल जरा तेज थी। उसके जाने के बाद श्यामा ने थोड़े संकोच से मिस्टर सिंह को कहा- ‘आप जरा रुकिए। दो मिनट में यहाँ मिलती हूँ।’ वह चुपचाप नेशनल लाइब्रेरी की कैंटीन में गई। उसे भूख लगी थी। उसने वहाँ दो टोस्ट खाए। उसे और भूख लगी थी। उसने दो टोस्ट और मंगवाए। एक कप कॉफी पी। सामने भवेश सिंह खड़े थे। अब वह थोड़ी ठीक लग रही थी। उसने मिस्टर सिंह से कहा-

‘भूखी थी।’ उसने भवेश सिंह को खाने के लिए नहीं पूछा। वह वर्षों से अकेले ही खाती है। वह सामने खड़े व्यक्ति से यह नहीं पूछती कि- ‘आप भी कुछ खाएंगे?’ अपना पैसा देती है, और उठ जाती है।

भवेश सिंह उसे रीडिंग रूम में ले गए। वहाँ चुप्पी और सन्नाटा था। उस खामोशी में कोई पियानो बजा रहा था। उसे वह धुन साफ-साफ सुनाई दी। उसने किताब के फ़ड़फ़ड़ाते पन्ने सुने। उसकी चाल में आकुलता थी। उसने वहाँ बैठे हर कवि-लेखक को प्रणाम किया। और बाहर निकल गई।

‘इनमें से कोई भी नहीं।’

‘तो वह कैसे हैं?’ -किसी ने पूछा।



‘नहीं बता सकती। हाँ, उनकी आंखों में मेरी आंखों का तारा चमकता है। उनके मन में वह मन चमकता है जो मेरा है। मैं उनके हाथों और कंधों को देखकर पहचान सकती हूँ। उनके हाथों में जो लकीरें हैं वह वही लकीरें हैं जो मेरी हाथों

में हैं। उनके चेहरे पर एक कहानी है। वह वही कहानी है जो मेरे चेहरे पर है।

‘यहाँ बैठती हूँ सीढ़ियों पर। वह आएंगे। एक दिन जखर

आएंगे। मैं उनको उनकी चाल से पहचान जाऊंगी। वह मेरे बैठने के ढंग से, मेरे उठने के ढंग से, मेरे हाथों से मेरी आँखों से मेरे दुख को देखते हैं। वह मिस्टर सिंह, जिनका चेहरा शांत और उत्सुक है, को पास बुलाती है और धीरे से कहती है-

‘सुन रहे?’

‘क्या?’

‘पियानो की धुन। कहीं बज रहा है। मेरे लिए। आपके लिए। हम सबके लिए।’

जब वह यह बात लाइब्रेरियन से कह रही होती उस समय

**जब वह लेखक आएगा तब
युद्ध के नहीं शांति के दिन
होंगे। सब कुछ ठीक हो
जाएगा। उन्हें सारी चीजें
अपनी जगह पर मिलेंगी।
उसके कमरे में जाले नहीं
रहेंगे। उसके कपड़ों में
सलवटे नहीं रहेंगी। उसके
पढ़ने की टेबल पर धूल नहीं
होगी, चादर तनी होगी।
बाथरूम साफ रहेगा।**

लाइब्रेरी में बैठा एक आदमी दूसरे से पूछता-

‘यह कौन है? रोज आती है।’

‘बड़े घर की है। जल्दी शादी हो गई थी। दो महीने में ही ससुराल से लौट आई। उसके बाद से अकेली है। मथुरा की है पर वहाँ लौटी नहीं। खूब पढ़ती है। इसकी अपनी लाइब्रेरी है। बड़ी। और बहुत पुराना पियानो। वह पियानो उतना ही पुराना है जितनी पुरानी यह लाइब्रेरी।’

‘पर किस लेखक को खोज रही है!’

‘नहीं, हम भी उस लेखक को खोज रहे हैं। हम जानना चाहते हैं आखिर उन्होंने इसके दुख को कैसा लिखा है? हम सभी उस लेखक का इंतजार कर रहे हैं। कोई दिन ऐसा होगा जब इतनी बारिश नहीं होगी। धूप निकलेगी। सामने इंद्रधनुष छा जाएगा और हमें लाइब्रेरी में वह लेखक बैठा दिखाई देगा जो उसके दुख को पढ़ रहा होगा। जो हम सब के दुख को पढ़ रहा होगा।’

हम स्त्री को रोज कहते हैं, देखो-

‘अपने दुख को कागज में लिखकर यहाँ रखे डिल्पे में डाल

दो’ हम यह भी कहते- चर्च क्यों नहीं चली जाती! वहाँ पर पादरी के सामने अपने दुख को कह दीजिए।’ लेकिन वह अपने दुख को लिखकर डब्बे में नहीं डालती। वह किसी मंदिर के पुजारी के पास नहीं जाती। उसका यह विश्वास है कि कोई लेखक है, जो यहाँ आते हैं। हर रोज आते हैं। वह जब आती हैं, उसके पहले आते हैं और वह उसके पहले ही चले जाते हैं। वह अलग-अलग समय पर आती है। वही हैं जो उसके मन की गुफा में उतरते हैं, जो उसके सन्नाटे को सुनते हैं। वही उसके कमरे में लगे हुए जालों को देखकर यह अनुमान लगा सकते हैं कि वे कितने पुराने हैं। कोई दिन ऐसा उसके जीवन में जरूर आएगा जब वह उनसे मिल पाएगी।

‘उसे इंतजार है उस लेखक का जो कहेगा – हाँ, मैं वही हूँ, जो तुम्हें सुन रहा हूँ।’

जब वह लेखक आएगा तब युद्ध के नहीं शांति के दिन होंगे। सब कुछ ठीक हो जाएगा। उन्हें सारी चीजें अपनी जगह पर मिलेंगी। उसके कमरे में जाले नहीं रहेंगे। उसके कपड़ों में सलवटे नहीं रहेंगी। उसके पढ़ने की टेबल पर धूल नहीं होगी, चादर तनी होगी। बाथरूम साफ रहेगा। कमरे में धूल नहीं होगी और उसका कमरा चमचमाएगा। खिड़कियों के पर्दे साफ होंगे, और कांच चमकेंगे। तारों से भरा आसमान कमरे में उत्तर आएगा। उस दिन वह खूब अच्छे से नहाएगी। सिर में तेल लगाएगी। अपने बढ़े हुए नाखूनों को काटेगी। अपने बालों को ठीक से बांधेगी। आंखों में काजल डालेगी। वह पेट भर खाएगी। बहुत दिन हो गए उसने ठीक से खाना नहीं खाया। ठीक से सोएगी। उसके नींद में कोई सपना नहीं आएगा। वह अपने नरम गद्दे को महसूस करेगी। उसे रात में कोई नहीं जगाएगा। उसकी आंखें जुगनू की तरह नहीं चमकेंगी। वह लेखक कुछ क्षण उसके पास बैठेगा। उस दिन कमरे में और कोई नहीं होगा। जब वह अकेली होती है यह महसूस करती है कि सामने कोई बैठा है। वह उस बैठे व्यक्ति से एक बात कहती। वह वही बात दूसरे व्यक्ति से दूसरे ढंग से कहती। वह तीसरे व्यक्ति से तीसरे ढंग से कहती। वह एक बात को तीन तरह से कहती। उसके कमरे

में तीन लोग होते । वे तीन लोग उसे ही दिखते । कोई नया व्यक्ति आता तो देखता वहाँ कोई नहीं है । वह समझ नहीं पाता कि वह किससे बात करती है । वह कहती है- ‘जब लेखक आएंगे तब तीन लोग नहीं होंगे । सिर्फ लेखक होंगे ।’

उसके होने से उसका दुख बह जाएगा । वह उससे पूछेगी-
‘दुख एकवचन है या बहुवचन?’

‘दुख जीवन है या मृत्यु?’

वह कुछ नहीं कहेगा । वह हँस कर कहेगी-

दुख है प्रेम

प्रेम दुख है

प्रेम न होना दुख है

प्रेम में होना दुख है

यह संसार दुख है

लेखक चुप है

लेखक के पन्नों पर आए अक्षर अंकुर हैं

दो व्यक्ति बात करने के लिए हैं

वे न लेखक हैं न स्त्री

वे दो मन हैं

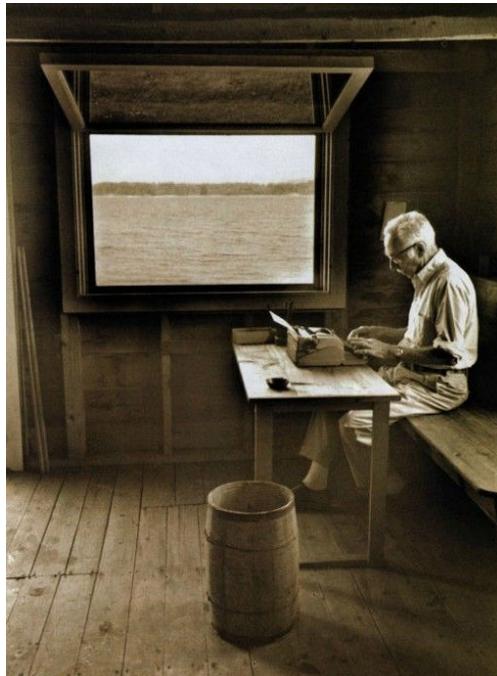
दो मन बात करने के लिए होते हैं ।

कमरे का अंतिम दृश्य - स्त्री बोल रही है लेखक सुन रहा है । लेखक सिर्फ सुनने के लिए सुन रहा । सुनने का धीरज और समय देना सिर्फ सुनने के लिए है । उससे लेखक कोई कहानी नहीं लिखेगा ।

स्त्री बोल रही है । वह बोलना उतना पुराना है जितनी पुरानी नेशनल लाइब्रेरी । लेखक बहुत पुराने पियानो पर कोई धुन बजा रहा है ।

यह पियानो उतना ही पुराना है जितनी पुरानी नेशनल लाइब्रेरी ।

पौने दो सौ साल



वह पियानो सुनते सुनते बोल रही है
यह बोलना दुख का विलोम है
यह बोलना प्रेम है
यह बोलना पुकारना है
कोई उसे पुकारता है
उसे कौन पुकारता है?
उसे प्रेम पुकारता है
वह कहीं रहती है
वह कहाँ रहती है?
वह प्रेम में रहती है।

वह लाइब्रेरी के लॉन में घूमने लगी। लाइब्रेरी की इमारत बिलकुल सफेद थी। वहाँ की सीढ़ियों पर बैठी बालों को ठीक करने लगी। तभी एक बड़ा सा चमगादड़ अपने पर फैलाए

उनके सिर के ऊपर से गुजरा। वह जल्दी से उठी और खचाखच भरे लाइब्रेरी के अंदर गई और चारों ओर देखा। एक ओर एक भारी मेज थी। उस पर कागज, किताबें, इनसाक्लोपीडिया, डिक्शनरियाँ आदि करीने से रखी हुई थीं। आलमारियों में अनगिनत पुस्तकें भरी थीं। बाईं ओर एक दो नवयुवक किताब पढ़ रहे थे। दाईं तरफ एक युवती, एक अधेड़ दो पुरुष अपनी पसंद की किताबें खोज रहे थे।

**उसने सोचा, वह पूरे छह बजे
तक उन्हें लिखते हुए देखेगी।
फिर उनके पास जाएगी।
सत्तावन, अट्टावन, उनसठ,
साठ। चार मिनट काटने के
लिए उसने एक कोमल पौधे
की टहनी तोड़ ली। टहनी के
कोर पर दूध सिमसिमाया
देखा। क्षण भर सोचा। फिर
झट से उसे फेंक दिया। वह
उनके पास गई। बोली- ‘गुड
ईवनिंग सर’।**

वह बैठ गया। अपने कागजों में खोया। उसे देख लग रहा था
वह अपनी तनी नसों, थकी आँखों और दर्द करती रीढ़ के

बावजूद कुछ लिखने की कोशिश कर रहा है। छह बजने में पांच मिनट बाकी थे। पांच सत्तावन। उसने सोचा, वह पूरे छह बजे तक उन्हें लिखते हुए देखेगी। फिर उनके पास जाएगी। सत्तावन, अट्टावन, उनसठ, साठ। चार मिनट काटने के लिए उसने एक कोमल पौधे की टहनी तोड़ ली। टहनी के कोर पर दूध सिमसिमाया देखा। क्षण भर सोचा। फिर झट से उसे फेंक दिया। वह उनके पास गई। बोली- ‘गुड ईवनिंग सर’।

पीछे गिरजे की धंटियाँ बजने लगीं।

गिरजे में प्रार्थना शुरू हुई।

हलके विराम के बाद वह मुस्कुराई।

वे स्थिर आंखों से उसे देख रहे थे। उनसे आंखें मिलते ही वे बोले- ‘कुछ कहना था।’

श्यामा की आंखों के काजल में ताजगी नहीं थी। पर आंखों में उत्सुकता ताजी थी। गहरी भी। कुछ कहने के लिए वह तैयार हुई, बोली- ‘आप कुछ लिख रहे थे?’

‘हाँ।’ - उनकी पलकें उठीं और आंखें पल भर के लिए श्यामा से मिल गई।

‘क्या?’ श्यामा की आंखें देख नहीं रही थीं, सोच रही थीं।

‘आप सुनेंगी?’ -उनके होंठ सिकुड़ गए। कुछ पल

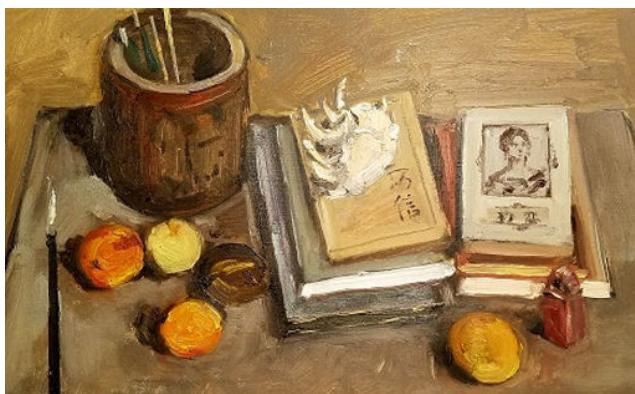
वे अपने में डूबे रहे, फिर बोले।

‘हाँ।’ -श्यामा ने आतंरिक भाव के साथ कहा।

‘अच्छा हो, कॉफी पीते हुए बात करें। ...कैंटीन में चलते हैं। आप कॉफी पसंद करेंगी या चाय?’

जो आप पसंद करें।’

‘तो कॉफी ही रहे।’ ...उनकी आंखें अंतर्मुखी हो गई- एक कोचवान था। वह घोड़े को पुचकारता और गाड़ी चलाता। एक दिन उसका बेटा मर गया। वह जिस भी सवारी को लेता थोड़ी



देर बाद उसे बोलता कि- मेरा बेटा नहीं रहा। हर सवारी कहती। सबको एक दिन मरना है। यह सब छोड़ो और आगे चलो। पूरे दिन किसी ने भी उसकी बात नहीं सुनी।

‘रात में वह अपने घर गया। भारी मन से उसने अपने घोड़े को कहा- मेरा इवान मर गया है। – यह सुनकर घोड़े ने मुँह हिलाया और उसका हाथ चाटने लगा।’

‘...पर यह आपकी कहानी नहीं है।’ उनका मुँह खुला रह गया। जैसे बहुत कुछ कहने को हो। लेकिन फिर सर हिलाकर वे चुप हो गए। श्यामा ने कॉफी की प्याली बढ़ा दी। सीधी दृष्टि से देखते हुए अपने को सहेज कर वह बोले- ‘शुक्रिया! आप जानती हैं! हाँ। यह मेरी नहीं चेखव की कहानी ‘ग्रीफ’ है।’ उनकी आँखों में सूनापन भर गया। क्षण भर में इतना भर गया कि श्यामा ने उनकी तरफ से आँखें हटा ली।



ऐसी ही कोई कहानी मैं अपने जीवन में लिखना चाहता हूँ। एक मुकम्मल कहानी। वे किसी गहरी सोच में डूब गए। बोले- ‘मैं किसी ऐसी चीज की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जिसे स्वयं नहीं जानता और न ही बता सकता।’ इसके बाद

बहुत देर तक खामोशी छाई रही।

वे जाने लगे- ‘गुड नाइट।’ शेष जो कहने को था, वह जैसे कहीं खो गया था। कोशिश करने पर भी श्यामा को कोई शब्द पकड़ में नहीं आए। उनकी बात सुनते हुए श्यामा पर उदासी छाने लगी थी, हालांकि वह जानती थी, वह उसे नहीं कह रहे थे। वह अपने से बात करना चाह रहे थे। उनकी उदासी भी उनके लिए ही थी। वे उनसे बात करते हुए अपने बारे में सोच रहे थे। उनके हाथ की घड़ी की टिक-टिक सात बजा रही थी। श्यामा को लगा लिखने में अवश्य ही इनको कुछ शरण मिलती



है। वे अकेले पैदल चले जा रहे थे। हवा ठंडी थी। निर्जन और एकांत फैली हुई सड़क। और दूर-दूर तक मध्यम और अंतर्मुखी बत्तियाँ। रोशनी और छाया। दूर तक फैला आकाश। बादलों के सिलसिले शांत और गंभीर। सड़क पर अनजाने लोग चले जा रहे थे। कोई हँसता कोई बात करता, कोई केवल सैर करता। उन सबके बीच में घिरकर भी वे अकेले थे। घने पेड़ की ओट से चाँद निकल आया और उसका अक्स जमीन पर दिखाई देने लगा। दूर कहीं 'मूनलाइट सोनाटा' बजने लगा।

श्यामा भवेश सिंह को खोजने लगी। वह उन्हें बताना चाहती थी। वह जिन्हें खोज रही थी वे जा रहे हैं। वहाँ सड़क पर। वहाँ जहाँ रोशनी और छाया है।

6, रिची रोड, कोलकाता-700019 मो.9433855014

sharmilajalan@gmail.com



मृणाल आशुतोष

यवु कथाकार। किस्ता कोताह (हिंदी) पत्रिका और समय संकेत (मैथिली भाषा, द्वारा सूचना एवं प्रसारण विभाग, भारत सरकार) के संपादन कार्य में सहयोग।

संतान

बादल गरजने के साथ दिल की धड़कन तेज हो गई। राम प्रसाद ने पत्नी की ओर देखा और पत्नी ने आशा भरी नजरों के साथ आकाश की ओर। कोई और दिन होता तो भगवान से मनाती कि जम कर बरसो, पर अभी ब्रह्म बाबा से लेकर छठी मैया तक, सबसे बारिश रोकने का गुहार लगा रही थी।

तीन दिन से बुखार में तप रहे अपने एकलौते बेटे को डॉक्टर दिखाकर अस्पताल से लौट रही थी रमसखिया। घर से एक कोस पहले ही उतार देता है टेम्पो। रास्ता है ही ऐसा कि टेम्पो क्या रिक्षा वाला भी उधर नहीं जाना चाहता। पचास रुपये दे दो, तब भी नहीं।

‘ला बौआ मुझे दे! तेज चल, वरना पक्का भींग जाएंगे।’

‘भगवान एकाध धंटे पानी रोक नहीं सकते क्या? अगर मेरे लाल को कुछ हो गया तो क्या करसंगी?’

तेज बूँदों का टपकना शुरू हो गया था। रामप्रसाद ने फटाक से कुर्ता खोलकर बेटे को लपेट लिया और दौड़ लगा दी।

तभी बारिश की छींटे और तेज हो गई। बच्चा रोने लगा। वह भगवान का नाम लेकर चीखी, ‘हे भगवान! पानी रोक दो।’

तभी दरारों वाले सूखे खेत दिखे जिनमें धान की फसल अपनी मौत का इंतजार करती नजर आ रही थी।

घर के नजदीक वह एक पल को ठिठकी। और जोर

से चीखा, ‘बरसो। और बरसो। खूब बरसो, बरसते रहो!’

मो. 8010814932

email: mrinalashutosh9@gmail.com



आयाथुराइ सांथन

(1941–2016) श्री लंका के प्रख्यात साहित्यकार आयाथुराइ सांथन श्रीलंका के जाफना प्रायद्वीप के इयालपानम जिले के निवासी थे। पहले तमिल में लिखते थे, फिर अंग्रेजी में लिखना शुरू किया। तीन कहानी संकलन, तीन उपन्यास और भी कई पुस्तकें। भारत के साहित्य अकादेमी के 'प्रेमचंद फेलो' भी रहे। श्रीलंका के सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 'साहित्यरत्नम' से विभूषित।

अंग्रेजी से अनुवाद
ननी शूर

श्री लंका की कहानी

मर्मांतिक

'दाऊजू, दाऊजू' -पेरियावार ने सुना -धीमी आवाज में उन्हें कोई बुला रहा था। फिर उन्होंने अपने हाथ पर किसी का कोमल स्पर्श महसूस किया। पेरियावार अपनी दोपहर की झपकी ले रहे थे। आँखें खोल कर उन्होंने देखा एक लंबतड़ंग शरीर उनपर झुका हुआ है।

'कौन है रे?' उन्होंने अपनी आरामकुर्सी से उठ बैठने की कोशिश की। सामने खड़े शख्स ने उनके उठने में मदद की।

'बाबू जी, जरा बताएँ तो यह कौन है?' उनकी पतोहू की आवाज थी।

पेरियावार के दाहिने हाथ ने बगलवाली मेज पर रखे चश्मे को टटोला। पर चश्मा पहन लेने से पहले ही उनको पता चल गया कि वह कौन था।

'जेगान रे, तू है?' वे उल्लास से चीख पड़े।
'हाँ, दाऊजी।' खुशी से जेगान चहक उठा,
'ददा की नजर मेरी नजर से तेज है।'

अपने नाती को लगभग पांच साल बाद देखने को आतुर हो पेरियावार ने तुरत-फुरत अपनी आँखों पर चश्मा पहन लिया। अपने चेहरे पर मुस्कान भरा जो शख्स सामने खड़ा

था, वह अब कोई लंबू, काला-कलूटा, दुबला-पतला छोकरा नहीं, बल्कि हड्डा-कड्डा एक दफ्फियल जवान था। यूरोप में रहने के कारण उसका रूप-रंग कुछ-कुछ गोरा हो गया था। मूँछों की वह पतली रेखा मिट गई थी। पेरियावार जोश-खरोश से उठ खड़े हुए। जेगान ने उन्हें भीचकर सीने से लगा लिया और अपना गाल बूढ़े के गाल की दाढ़ी पर रखा।

‘अरे तूने तो हमें फोन किया था कि तू अगले शनिवार को आनेवाला है, क्यों?’ पेरियावार को डीओडरंट की तेज सुवास मिली।

‘दाऊजी तो एकदम पतले-दुबले हो गए। क्यों अम्मा?’ जेगान ने सवाल का जवाब दिए बिना चिंतित होकर अपनी माँ से पूछा।

‘अरे नासमझ लड़का, क्या तू सोचता है कि घड़ी की सुई उल्टी दिशा में धूम रही है?’ पेरियावार ने मुस्कराकर नाती की बाँहों को प्यार से थपकाया।

‘तू तो थका-माँदा है। पहले तू अपना खाना खा ले, फिर हम आराम से गपशप करेंगे।’ कहकर वे फिर कुर्सी पर बैठ गए।



‘नहीं दाऊजी, मैं कर्तव्य थका नहीं हूँ। कोलंबो हवाई अड्डे पर जाते समय मैंने फ्लाइट में संभावित देर का अंदेशा करके पहले ही खाना खा लिया था। हम दो ही घंटों में जाफना पहुँच गए।’ यह कहकर जेगान भी बगल की एक कुर्सी पर बैठ गया।

उसने फिर मुस्कराकर कहा, ‘मैं यहाँ दो हफ्तों की छुट्टी बिताने आया हूँ और अपने घर का बना परसंदीदा खाना खाकर तृप्त होना चाहता हूँ।’

‘मैं तेरे लिए काफी ले आऊँ बेटे?’ सीता ने पूछा।

‘हाँ; हाँ अम्मा’, माँ की तरफ मुड़कर उसने जवाब दिया। ‘मेरी जीभ हमारे घर की धनिया काफी पीने को अरसे से तरस रही है।’

सीता जल्दी-जल्दी रसोईघर की तरफ लपकी। उसका चेहरा एकदम खिला हुआ और ममतामयी मुस्कान से भरा था।

‘तेरे भाई-बहन तुझे देखकर ताज्जुब हो जाएँगे।’ पेरियावार ने कहा और जेगान का हाथ अपने हाथ में लेकर आरामकुर्सी पर फिर लेट गए, ‘वे पाँच बजे के बाद स्कूल से वापस आएँगे।’



‘हाँ, अम्मा ने बताया।’

जेगान की आँखें सामने दीवार पर टंगे पिताजी के एनलार्ज्ड फोटोग्राफ पर अटक गईं।

‘तू अब अपने पिता-जैसा दिख रहा है।’ पेरियावार ने संतोष से कहा। ‘इस उम्र में वह तेरे ही जैसा था।’ उनकी आवाज अचानक लरज गई, ‘अगर वे बदमाश हत्यारे हमारे देश में न आते और उसकी हत्या न कर डालते तो पिछले महीने तेरे पिता की आयु चौबन साल की होती।’

एक दिन सुबह-सबेरे जब पेरियावार का बेटा अपने घर के ही आंगन में गिरे हुए ताड़ के फल चुन रहा था उस समय इंडियन पीस कीपिंग फोर्स के एक जवान ने उसके इकलौते बेटे को गोली मार दी। तत्काल बेटे की मौत हो गई। सेना के अफसर ने बताया था कि बाग के

झुटपुटे में चलती-फिरती आकृति देखकर गली में निगहबानी करनेवाले जवान के मन में शक हुआ था और उसने गोली मार दी। पर यह कैफियत पेरियावार के परिवार के लिए कोई माने नहीं रखती थी। पेरियावार की पत्नी पछाड़ खाकर गिर पड़ी थी। वह भी एक ही महीने के अंदर चल बसी। अपने बेटे की मौत के तीसवें दिन की भीख देने की रस्म पूरी होने के पहले ही वह चली गई। पेरियावार की आंखों के सामने वह भयंकर दृश्य कौंध गया।

पेरियावार ने चश्मा उतारकर कंधे पर रखे शाल से अपनी आँखें पोंछीं और वे एकदम चुप हो गए।

जेगान को सब कुछ याद आ गया। उस समय वह बारह साल का लड़का था। उस दिन वह कितना रोया था।

पेरियावार ने गला साफ किया और कहा, ‘तुझको विदेश भेजने के पीछे हमारा और कोई कारण नहीं था,

केवल एक ही कारण था और वह था तेरी सुरक्षा। मेरे दिन तो गिने जा रहे हैं। मैं नहीं चाहता कि हमारे नाती-नातिन भी हमारे देश के इन सब संकटों में ग्रस्त हो जाएँ। तुझे जो करना है

वह है अपने भाई-बहनों को भी जल्दी से जल्दी यहाँ से अपने पास ले जा।’

सीता काफी के दो प्याले ले आई। ‘बाबू जी, यह आपके लिए है, बिना चीनी की।’ कहकर उसने एक प्याला ससुर के हाथ में थमा दिया और दूसरा प्याला अपने बेटे को। जेगान ने प्याला ले लिया। उसी समय पेरियावार की नजर जेगान के कान पर पड़ी तो उन्होंने पूछा, ‘अरे, तेरे कान में क्या है यह? जरा इधर मुड़ तो देखूँ।’ उनका स्वर चकित था।

‘कान की बाली है?’

‘हाँ, दाऊ जी, आजकल वहाँ का फैशन है यह। पर



केवल एक ही कान में।’ जेगान ने मुस्कराकर पूछा, ‘यह बाली आपको पसंद है दाऊ जी?’

‘जमाना बदल रहा है’, कहकर पेरियावार हँसने लगे।

‘तू मुझसे पूछ रहा है यह बाली मुझे पसंद है कि नहीं? अरे बेटे, क्या तूने कभी खयाल नहीं किया कि तेरे दादा के दोनों कानों की लोलरियाँ छिदी हुई हैं?’ कहकर उन्होंने बाएँ हाथ से अपने कानों की लोलरियों को छुआ।

कहा, ‘मैं अपने दसवें साल की उम्र से लगभग दस या बारह साल तक कान की बालियाँ पहनता आया था। तेरे परदादा तो अपने कान की बाली ‘काडुक्कान’ के लिए बहुत मशहूर थे। उनका हर एक ‘काडुक्कान’ एक-एक सवेरिन से बना हुआ था। उन काडुक्कानों को हम उनकी मृत्यु के बाद उनकी चिता में आग देने से पहले ही हटा पाए थे। पेरियावार ने होशियारी से अपने कांपते हाथों से काफी का प्याला मुँह तक उठाया और नाती से कहा, ‘काफी पी ले भाई, ठंडी हो रही है।’

‘लाजवाब काफी, अम्मा!’ चटखारे लेते हुए जेगान ने कहा और फिर अपने दादा की तरफ मुँह करके पूछा, ‘पर हमारे पप्पा के कान तो नहीं छिदे हुए थे, दाऊ जी। वह क्यों?’

‘हाँ’, पेरियावार ने शांत स्वर में कहा, ‘मैंने तेरे पप्पा के कानों को छेदने नहीं दिया था। इसके पीछे भी एक कारण था।’ कहकर उन्होंने अपनी काफी खत्म की और काफी के प्याले को सीता के हाथ में दे दिया।

तुझे तो पता है कि 1950 साल में तेरे पप्पा का जन्म हुआ था। हमने उसके कनछेदन की रस्म मनाने के लिए उसके दसवें साल तक ठहरना चाहा। उस समय मैं श्रीलंका के दक्षिण प्रांत के एक शहर में पीडब्ल्यूडी कार्यालय में एक निरीक्षक का काम करता था। 1958 में जब देशभर में तमिल-विरोधी



दंगा-फसाद शुरू हो गया, उन दिनों मैं उस शहर में बुरी तरह फँस गया। उन दिनों हमारे दफ्तर में समरसिंघे नाम

का मेरा एक सिंहली दोस्त था। वह ड्राफ्ट्समैन था। उसने मुझे अपने क्वार्टर में न रहने के लिए सलाह दी और मुझे अपने घर ले जाना चाहा। मेरी बदनसीबी यह थी कि जब हम दोनों उसके घर जाने लगे तभी रास्ते में हम पकड़े गए। गुंडों ने हमें घेर लिया। समरसिंघे ने बताया कि हम दोनों सिंहली हैं। हालांकि मैं अच्छी सिंहली बोल सकता था, पर गुंडे केवल उसी से संतुष्ट नहीं हुए। और भी पक्के तरीके से उन्होंने मुझे परखना चाहा। केवल तमिलों में ही अपने कानों को छेदने की प्रथा है। गुंडों में से एक की नजर मेरे कान की ललरियों पर पड़ी और दूसरे ही क्षण मुझपर लातों और धूँसों की बौछार होने लगी। मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। समरसिंघे अगर हाथ जोड़कर विनती न करता तो वे मुझे उसी दिन जान से मार डालते। समरसिंघे के झूठ बोलने के कारण गुंडों ने उस पर भी

कई भयानक प्रहार किए। उस दिन मैं बाल-बाल बच गया था। और किसी तरह एक शरणार्थी शिविर में जाकर शरण ली थी। फिर जहाज से मुझे जाफना भेज दिया गया। शरणार्थी शिविर में ही मैंने तय कर लिया था कि मैं अपने बेटे के कानों को नहीं छेदूँगा।'

कुछ देर तक पेरियावार चुप रहे फिर लंबी सॉस भरते हुए कहा, 'इतने पर भी तो मैंने अपने बेटे को बचा नहीं पाया।'

जेगान ने देखा आंसुओं की दो बूँदें दादा जी के चश्मे के फ्रेम से टपक रही थीं।

ननी शूर, मो.9432337929

प्राप्ति

112



ननी शूर

भारतीय राजस्व सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी। हिंदी और अंग्रेजी से बांग्ला में तीन सौ से अधिक और बांग्ला और अंग्रेजी से हिंदी में सत्तर से अधिक कहानियों के अनुवाद किए।

'कृश्न चंद्रेर निर्वाचित गल्प' अनुवाद-ग्रन्थ के लिए 'साहित्य अकादेमी अनुवाद पुरस्कार'।



16 वीं सदी की भक्त कवि

मीराबाई : जड़े हैं फिर भी प्रवहमान हूँ

उपमा ऋचा

पिछले एक दशक से
लेखन में सक्रिय।
कवि, स्वतंत्र पत्रकार
और अनुवादक।

मीराबाई जिस काल में थीं, उसका स्वभाव वस्तुतः जय-पराजय, सत्ता संघर्ष, अलगाव और अशांति की स्थाही से लिखा जा रहा था। अविश्वास इस काल का मूल स्वर था और धर्म मूल प्रश्न। राजनीतिक परिदृश्य पर बादशाहत की चाह प्रधान थी। साम्राज्य विस्तार की लालसा युद्धों को जन्म दे रही थी। परिणामतः आर्थिक असंतुलन बढ़ रहा था। संस्कृति की नैया डगमगा रही थी। ताकत, गरीबी, गुलामी, कट्टरता, स्वार्थ और षड्यंत्र के भार से बोझिल समाज की स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी।

चूंकि इस काल की स्त्री कहीं न कहीं सुविधानुसार उपयोग किए जाने की नियति से बंधी हुई थी, इसलिए इस काल का ‘स्त्रीकाल’ विगत से बहुत अलग नहीं था। यानि वही दंश, वही बंधन, वही डर, वे ही लकीरें और वे ही दृष्टियाँ!

फेमिनिटी (स्त्रीत्व) फर्टिलिटी (उर्वरता) और फिजिकलिटी (दैहिकता) के सवाल उस काल में भी स्त्री के सामने थे, लेकिन विमर्श के विषय के रूप में नहीं, उसकी गुणवत्ता मापे जाने के लिए उपकरण के रूप में नहीं। ऐसे समय में मीरा का परंपरा के विरुद्ध खड़ा होना सामान्य घटना नहीं थी। अपने ही समाज के विरुद्ध मुखर होनेवाले इस विरोधी स्त्री स्वर की

(जीवन और समय के बरक्स) व्याख्या होना आवश्यक है, लेकिन यह सरल नहीं है। इसका कारण यह है कि इतिहास मीरा के विषय में मौन है और जनश्रुतियों पर चढ़ी हुई हैं क्षेपकों, आख्यानों की मोटी परतें।

हालांकि समय-समय पर मीरा के विषय में नई जानकारियाँ सामने लाने के दावे किए जाते रहे हैं, लेकिन इन दावों का लक्ष्य उनके जीवन के विषय में तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध करने से ज्यादा उनकी छवि से जोड़ दी गई चमत्कारिक घटनाओं के विस्तार में अधिक है। बकौल माधव हाड़ा, ‘साहित्यिक इतिहासकारों और आलोचकों और बाद में नए प्रचार-माध्यमों ने मीरा के स्त्री जीवन की कथा को पूरी तरह प्रेम, रोमांस, भक्ति और रहस्य के आख्यान में बदल दिया। उसके साहस और स्वेच्छाचार को वामपंथी और नए स्त्री-विमर्शकार ले उड़े। उन्होंने इनकी मनचाही व्याख्याएँ कर डालीं। मीरा पर देशी-विदेशी विद्वानों ने कई शोध कार्य किए, लेकिन सभी ने कसौटियाँ और मानक अपने रखे। उसके संबंध में ज्ञात बहुत कम था, इसलिए लोगों के पास अपने

तयशुदा मानकों के अनुरूप उसका नया रूप गढ़ने की गुंजाइश और आजादी बहुत थी। लोगों ने इसका जमकर लाभ उठाया और अपनी-अपनी अलग और कई नई मीराएँ गढ़ डालीं। यह मीरा कहीं भक्त-संत थी, तो कहीं असाधारण विद्रोही स्त्री और कहीं रहस्य और रोमांस में ढूबी प्रेम दीवानी।’

यही वजह है योग, भक्ति, प्रेम, विद्रोह, विरोध, स्वीकार-अस्वीकार जैसी अनेकानेक व्याख्याओं के बाद भी काल की परिधियों में अपने छंद रचती मीरा को आज तक किसी एक सिरे, किसी एक दर्शन से बांधना संभव नहीं हो सका। लेकिन बाजारवाद, पूंजीवाद और भूमंडलीकरण के अलंबरदारों द्वारा गरमा-गरम नारों, बहसों, विवादों और राजनीति के शोर में तब्दील होती जा रही स्त्री कथा को समझने के लिए मीरा को समझना बेहद जरूरी है। इसलिए नहीं कि मीरा ने समय द्वारा खींची लकीर के बाहर कदम

स्त्री अबला कह दिए
जाने भर से निरीह
नहीं हो जाती,
लेकिन यह लेबिल
उसे आक्रामक होने
को विवश जखर कर
सकता है।



रखने का साहस किया। बल्कि इसलिए कि मीरा ने यह कार्य उस समय किया, जब लकीरें ही नियति के रूप में स्वीकार कर ली गई थीं।

समय की बृहद कथा में नई भूमिका तलाशती स्त्री

नब्बे के दशक में नारीवादी सिंथिया द्वारा पूंजीवादी तंत्र से पूछा गया सवाल है, ‘तुम्हारी व्यवस्था में स्त्री कहाँ है?’ यह उस पूरी सोच पर सवालिया निशान की तरह है, जिसमें मान लिया जाता है कि नारी को समाज में दोयम स्थिति

स्वीकार कर लेनी चाहिए, क्योंकि वह शारीरिक रूप से कमजोर है। क्योंकि उसका कार्य-क्षेत्र घर है। क्योंकि उसे बाहर की समझ नहीं। क्योंकि वह राजनीतिक दांवपेंचों का हिसाब नहीं लगा सकती। क्योंकि स्त्री का जेंडर पुरुष से अलग है, लक्ष्य अलग हैं, इच्छाएँ अलग हैं। इसलिए उन्हें अलग कार्य करने चाहिए। पीठ पर बुद्ध का भय, राम की मर्यादा, कृष्ण के रास, धर्म की विवशता और दुर्योधन के अद्वाहास को ढोती आ रही स्त्री को भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाने, विवाह और प्रजनन की अनिवार्यता से इनकार करने, यौनिकता से जुड़े सवाल उठाने, समान श्रम के लिए समान वेतन की मांग रखने, अपनी रुचि-अरुचि जाहिर करने, राजनीतिक अधिकार मांगने, पितृसत्ता के नियमों को चुनौती देने का साहस यकीनन उपर्युक्त सवाल ने दिया। लेकिन क्या यह सवाल, यह साहस इसी समय की देन था? निश्चय ही नहीं, और इसलिए नहीं कि इससे बहुत पहले मीरा समय के द्वारा लिखी जा रही बृहद कथा में नई भूमिका तलाशती स्त्री का किरदार रच चुकी थीं। उस स्त्री का, जो लोकलाज, कुल-मर्यादा के नाम पर स्वतंत्रता का बलिदान करने के बजाय अपने विरोधियों को प्रकट चुनौती देती है :

**लोकलाज कुल काण जगत की,
दइ बहाय जस पाणी।
अपणे घर का परदा करले,
मैं अबला बौराणी ॥**

यहाँ मीरा पूरी तरह नारीवाद की पक्षधर की भूमिका में हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरोध में उनके स्वर हताशा के गर्भ से

**वह अपने खुलेपन में
आजाद है... वह यायावर
स्त्री, वह मुक्त बूँद, वह न
सरहद जानती है और न
रीति-रिवाजों के बंधन।
समय उसके लिए वह सत्ता
नहीं जिसे पाने के लिए उसे
संघर्ष करना पड़े, क्योंकि
उसका जीवन अपने जुनूनों
के साथ निर्मल पानी की
तरह बहता है।**

नहीं था। इसलिए रवायतों की गलियों से निकलकर मीरा ने जो राह चुनी, वह हू-ब-हू वही राह थी जिस पर चलने का संकल्प आए दिन नारीवादी समारोहों में लिया-दिया जाता है :

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ
साध संगति करि हरि सुख ले, जगसूँ मैं दूरी रहूँ
तन धन मेरो सब ही जावो, भल मेरो सीस लहूँ
मन मेरो लागो सुमिरन सेती, सबको मैं बोल सहूँ।

स्त्री विमर्शकार आरंभ से ही लैंगिक समानता का मुद्दा उठाते आए हैं। यानी लैंगिक न्याय और समानता पाना हर स्त्री का अधिकार है और यदि लैंगिक आधार पर स्त्री का शोषण किया जाता है तो यह मानवाधिकार का उल्लंघन माना जाएगा। लॉर्ड डेननिंग अपनी पुस्तक में लिखते हैं, ‘चूंकि एक स्त्री पुरुष के ही समान सोचने, विचारने, कार्य करने की क्षमता रखती है, इसलिए उसे भी पुरुष के समान व्यक्तित्व विकास के समान अवसर मिलने चाहिए। कई अर्थों में स्त्री पुरुष से भी महान है क्योंकि वह हजार कष्ट सहकर एक जीवन को आकार देती है। विवाह को पति की दासता स्वीकारने से जोड़ना और लिंग के आधार पर उसके साथ दोयम व्यवहार करना, किसी भी दृष्टि

ठीक उसी तरह फूटते हैं, जैसे बारिश के बाद कल्लर जमीन पर अंकुर फूट आते हैं। इस स्वर में एक स्पष्ट बयान है कि स्त्री अबला कह दिए जाने भर से निरीह नहीं हो जाती, लेकिन यह लेबिल उसे आक्रामक होने को विवश जरूर कर सकता है।

निश्चय ही मीरा ने अपने काव्य का सृजन सशक्तिकरण के किसी महान आदर्श की कल्पना अथवा क्रांति के स्वप्न को आधार बनाकर नहीं किया। लेकिन पुरानी मान्यताओं से संचालित समाज के समक्ष समर्पण करना भी उस प्रेम दीवानी का स्वभाव



से उचित नहीं है। न ही उसका स्वाभिमान, सम्मान और गरिमा ठोकर मारने के लिए है।'

स्त्री के साथ उत्पीड़न और संत्रास का जो लंबा इतिहास जुड़ा हुआ है उसकी जड़ें तमाम कोशिशों, विमर्शों के बावजूद, मीरा से लेकर माया एंजलों तक की कहानी में एक समान फैली दिखाई देती हैं। लेकिन आज की माया की तरह मीरा उस इतिहास को नियति मनकर स्वीकार नहीं करती। बल्कि मुखर होकर हालात बयान करती है :

हेली म्हांसूं हरि बिन रहो न जाय।

**सासु लड़ै मोरी ननद खिजावै, राणां रहो रिसाय
पहरो भी राख्यो, चोकी भी बिठाइयो, ताला दिया जुड़ाय
पूर्वजनम की प्रीत पुरानी सो क्यों छोड़ी जाय।**

स्त्री को अपने मन, मंतव्य और सरोकार प्रकट करने से बरजने वाले मध्यकालीन समाज में मीरा का यह स्वीकार निश्चय ही सशक्तिकरण के तुमुल घोष के रूप में देखा जाना चाहिए। इसके द्वारा एक स्त्री न केवल खुद को समाज की खींची हुई लकीर पर चलने की बाध्यता से मुक्त करती है, बल्कि स्पष्ट शब्दों में अपने प्रेम, अपने समर्पण को स्वीकार करती है :
मैं तो सांवरे के रंग राची।

साजि सिंगार बांधि पग धुंधरू, लोक-लाज तजि नाची॥

स्त्री अधिकारों के प्रति सचेत नारी की तरह मीरा के काव्य में निजता की मांग है। मांग है उस भार से मुक्ति की जो सोशल-कडीशनिंग द्वारा पितृसत्ता आधी आबादी के कंधों पर अब तक लादती आई है। यहाँ एक बात और महत्वपूर्ण है और वह यह कि मीरा वहाँ भी नहीं हारती जहाँ नए समय का नारीवाद चूक रहा है। पितृसत्ता को कोसने में दक्ष आधुनिक नारीवाद व्यूटी मिथ का शिकार है और कॉस्मेटिक्स के बाजार का हिस्सा बनकर खुश है। लेकिन मीरा उस दौर में खुद को एक उत्पाद के रूप में स्वीकार करने से इंकार करती हैं, जब स्त्री को एक चमकदार अंधेरे में जे जाने वाले सौंदर्य का ऐसा बाजार नहीं था। वह मनुष्य के रूप में अपने सौंदर्य की पहचान

खोजती है और ‘ब्यूटी बिद ब्रेन’ की अवधारणा के असल मायने प्रकट करती है :

चूँड़ियां फोरूं, मांग बिखेरूं
कजरा मैं डारूं धोय री
निसि बसर मोहे विरह सतावे,
कल न परत पल मोय री...

उस समय के स्वभाव को देखते हुए यह सहज ही

मीरा का शब्द-शब्द अपने
समय के परिदृश्य पर
दिखाई देते पुरुष अहं,
उग्र-राष्ट्रीयतावाद,
अंध-देशभक्ति, लैंगिक
भेदभाव, नैतिक पतन, वर्ग
संघर्ष से दूर एक अलग ही
पंथ रचता नजर आता है।

लिए रोज एक नई चोट खाती हो। वहाँ सदियों पहले एक स्त्री का मुखर होकर बंधनों का बहिष्कार करना नए समय के नारीवाद को आत्म-आकलन की राह दिखाता है।

नहिं भावै थांरो देसडलो जी रंगरुडो ॥
थांरा देसा में राणा साथ नहीं छै लोग बसे सब कूडो ॥
गहणा गांठी राणा हम सब त्यागा त्याग्यो कररो चूडो ॥
काजल टीकी हम सब त्याग्या त्याग्यो है बांधन जूडो ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बर पायो छै रुडो ॥

स्त्री की पूर्णता, उसका अर्थ पुरुष में खोजने वाले समाज में मीरा का पति की मृत्यु के बाद सती होने से मना करने और एक सामान्य विधवा स्त्री की तरह चारदीवारी में कैद हो जाने के बजाय कृष्ण प्रेम में घर-बाहर घूमने, मंदिरों में नृत्य करने, गलियों में गाते फिरने के मूल में

जितना विद्रोह था उससे कहीं ज्यादा यह दिखाने, जताने की चाह थी कि एक स्त्री भी पुरुष के समान निर्णय ले सकती है।

अमेरिकन लेखक रोमन पेमेन की चर्चित कृति है- ‘द वांड्रेस’ इस कृति की नायिका का जो बिंब है, उसमें मीरा की गंध है। अपनी यायावर नायिका के लिए पेमेन ने जो लिखा है, क्या उसे पढ़कर मीरा सजीव नहीं हो जाती? वे लिखते हैं, ‘वह अपने खुलेपन में आजाद है... वह यायावर स्त्री, वह मुक्त बूंद, वह न सरहद जानती है और न रीति-रिवाजों के बंधन। समय उसके लिए वह सत्ता नहीं जिसे पाने के लिए उसे संघर्ष करना पड़े, क्योंकि उसका जीवन अपने जुनूनों के साथ निर्मल पानी की तरह बहता है।

मीरा में जिस तत्व को पूरब ने आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति की तरह देखा और पश्चिम ने इरोटिक डिजायर की तरह और परंपरागत सत्ताओं ने जिसे विद्रोह की तरह ग्रहण किया, वह तत्व कुछ और नहीं, निर्मल पानी की तरह बहता मीरा का जुनून है। उसे अपनी यायावरी प्यारी है, फिर भले बदनामी मिले या देश निकाला।

राणाजी म्हाने या बदनामी लगे भीठी।

कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अपूठी।

पश्चिम में नाओमी कहती हैं कि यौन कामना सामाजिक स्थिति से तय होती है, जबकि पूरब इसका मूल संस्कृति और संस्कारों में तलाशता है। लेकिन मीरा ने अपना दर्शन पूरब और पश्चिम की धारणाओं के परे रखा। उपभोक्तावादी समय का चलाया दुविधा और सुविधा का वह खेल समझने की जखरत है, जिसके प्रभाव में स्त्री के मन और जीवन के अर्थ



उन दैहिक संदर्भों पर लाकर सिकोड़ दिए गए हैं। जहाँ स्त्री जिन वृत्तियों के लिए पुरुष को गरियाती है, उन्हीं में अपनी आजादी और सशक्तिकरण तलाशती है। नारीवाद के नाम पर आदिम प्रेम की मांग बढ़ती जा रही है, जबकि मीरा का मुखर स्वीकार- ‘सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस बिध होय’, समूचे नारीवादी लेखन से इस आत्मावलोकन की अपेक्षा करता है। स्त्री के प्रेम का उद्देश्य स्त्री-स्वतंत्रता के किन अर्थों को स्थापित करना हैं? क्योंकि मीरा का नारीवाद शिकायत और मांग पर नहीं, कर्म और स्वीकार के धरातल पर खड़ा है :

अन्न नहीं भावे नींद न आवे विरह सतावे मोय ।
घायल ज्यूं धूमूं खड़ी रे म्हारो दर्द न जाने कोय ॥
दिन तो खाय गमायो री, रैन गमाई सोय ।
प्राण गंवाया झूरता रे, नैन गंवाया दोनु रोय ॥
जो मैं ऐसा जानती रे, प्रीत कियाँ दुख होय ।
नगर ढुँढेरौ पीटी रे, प्रीत न करियो कोय ॥
पन्थ निहारूँ डगर भुवारूँ, ऊभी मारग जोय ।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलयां सुख होय ॥

यहाँ अमरीकन फेमिनिस्ट ग्लोरीय एस्टीनेम का कथन याद आ रहा है। उन्होंने कहा था, ‘वास्तविक अर्थ में नारीवादी वह व्यक्ति है, जो अपनी सरलता और मानवता को पहचान लेता है। अपनी जीवन कथा से जोड़ दिए गए क्षेपक, चमत्कार, रहस्यों से परे मीरा बिल्कुल यहीं तो कर रही थीं। वह सरलता और मानवता का प्रतिरूप थीं। इसीलिए मीरा का शब्द-शब्द अपने समय के परिदृश्य पर दिखाई देते पुरुष अहं, उग्र-राष्ट्रीयतावाद, अंध-देशभक्ति, लैंगिक भेदभाव, नैतिक पतन, वर्ग संघर्ष से दूर एक अलग ही पंथ रचता नजर आता है। इस तौर पर मीरा वस्तुतः एक सबक है, जो याद दिलाता है :

-स्वतंत्रता मांगने से नहीं मिलती, उसके लिए कर्म करना पड़ता है।

-मीरा एक आईना है, जिसमें अधिकार की तस्वीर कर्म के बिना अधूरी है।

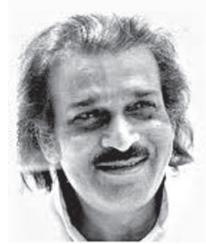


-मीरा एक प्रश्न है, वह सवाल पूछती है कि जिस विचार को तुमने लिबास की तरह ओढ़ रखा है, क्या वह तुम्हारी आत्मा को ढंक रहा है?

-मीरा एक कसौटी है, जो पूछती है कि बदलाव की इच्छा क्रोध से संचालित है या संकल्प से? उसकी नींव में नफरत है या प्रेम?

हालांकि यह एक अलग विमर्श का विषय है कि मीरा काव्य के जिस पक्ष की व्याख्या नारीवादी तुला पर रखकर की जाती रही है, उसमें सत्य कितना है और सत्य का आरोपण कितना। लेकिन इसमें दो राय नहीं कि मीरा के काव्य में अपने काल के स्त्रीकाल से स्वत्व की तलाश कहीं ज्यादा गहरी है और यही तलाश तो नारीवाद का मूल प्रश्न है न...?

मो.9413658336, ईमेल : upmamcreat@gmail.com



प्रयाग शुक्ल

वरिष्ठ कवि, कथाकार
और कला समीक्षक।
'कल्पना', 'दिनमान'
और 'नवभारत टाइम्स'
के संपादकीय विभाग में
रहते हुए दीर्घ काल
तक सृजनात्मक
पत्रकारिता।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

15 सितंबर 1927–24 सितंबर 1983

तीसरा सप्तक के कवि, नई कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर और साहित्यिक पत्रकार। प्रमुख कृतियाँ : 'धंटियाँ', 'एक सूनी नाव', 'कुआनो नदी', 'खूंटियों पर टंगे लोग' आदि। उपन्यास : 'सोया हुआ जल'। नाटक : 'बकरी', 'लड़ाई'। 'दिनमान' में लंबे समय तक समरणीय पत्रकारिता।

सर्वेश्वर जी से जुड़ी यादें

सर्वेश्वर जी का कामकाज विपुल है। एक बड़ी संख्या में उनकी कविताएँ उपलब्ध हैं। उन्होंने कहानियाँ भी लिखीं, उपन्यास भी हैं। 'दिनमान' में रहते हुए वे एक सांस्कृतिक टिप्पणीकार के रूप में जाने गए। चर्चित भी हुए। रंगमंच, संगीत, नृत्य आदि पर उनकी टिप्पणियाँ हैं। 'दिनमान' में प्रति सप्ताह प्रकाशित होनेवाला उनका कॉलम 'चरचे चरखे' तो मानो उनकी एक विशेष देन है। विभिन्न सामाजिक प्रश्नों और विषयों पर वह इसमें लिखते थे, प्रायः व्यंग्य-विनोद की धार के साथ, कभी-कभी तीखी मार करते हुए भी। पाठक इस कॉलम की प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक करते थे। जिन लोगों को 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ग्रुप के 'दिनमान' की याद है, उन्हें यह भी याद होगा कि साठ और सत्तर के दशक में हर पढ़े-लिखे हिंदी भाषी के घर में इसका होना अनिवार्य माना जाता

था। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और देश के अन्य प्रदेशों में इसकी पहुँच थी। पड़ोसी देश नेपाल में भी यह बहुतों का प्रिय पत्र था।

सर्वेश्वर जी को पाठकों की कमी कभी नहीं रही। उन्होंने बच्चों के लिए भी बहुतेरी कविताएँ लिखीं, जिनमें से एक ‘बतूता का जूता’ कई पीढ़ियों से होती हुई, बच्चों और बड़ों की एक मनपसंद कविता आज भी है। बच्चों के लिए उनके नाटक भी हैं, ‘भौ भौ खौं खौं’ और ‘लाख की नाक’ जैसे, जो आज भी खेले जाते हैं। उन्होंने बच्चों की पत्रिका ‘पराग’ का संपादन किया एक समय और बताया कि वास्तव में बच्चों की पत्रिका कैसी होनी चाहिए- विविध विषयों से भरपूर, रचनात्मक और कल्पनाशील। भाषा के साथ बहुत अच्छे अर्थों में खेल करती हुई, रोचक। उनके ‘पराग’ के संपादकीय आज भी उठाकर पढ़ने लायक हैं।

उन्होंने विविध विषयों पर न केवल लिखा, बल्कि उनके ‘प्रयोग’ और ‘उपयोग’ के साथ भी जुड़े। जब उनके नाटक ‘बकरी’ का मंचन हुआ तो प्रस्तुति में, उसकी तैयारी में, उनकी सक्रिय रुचि रही। वे अपने समय के कई रचनाशील, प्रयोगधर्मी कलाकारों के आत्मीय संपर्क में रहे। जे.स्वामीनाथन, हिम्मत शाह, ब.व.कारंथ, ओम



फैज साहब के साथ भीष्म साहनी, प्रभाकर माचवे, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भारत भूषण अग्रवाल। पीछे प्रयाग शुक्ल और एक रुसी कवि।

शिवपुरी, सुधा शिवपुरी, बंसी कौल, भानु भारती, रामगोपाल बजाज जैसे नाम इस सिलसिले में सहज ही गिनाए जा सकते हैं। नृत्य जगत में से कुमुदिनी लाखिया, स्वप्न सुंदरी जैसे नाम याद आते हैं।

अज्ञेय के तो वह शुरू से निकट और उनके आत्मीय थे। वे ही उनको ‘दिनमान’ में लाए थे। धर्मवीर भारती,

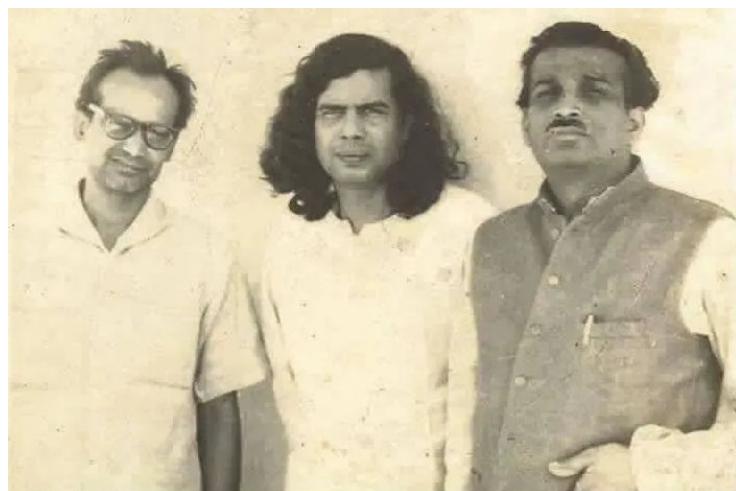
**पारिवारिक व्यक्ति के रूप में
तो वह अलग से याद किए जा
सकते हैं। पत्नी के असामयिक
निधन के बाद उन्होंने अपनी
दोनों पुत्रियों विभा-शुभा को
जिस तरह बड़ा किया, प्रेम
और पर्याप्त चिंता के साथ,
वह सचमुच उल्लेखनीय है।**

रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा, कुंवर नारायण आदि के साथ उन्होंने बहुतेरा समय बिताया था। फणीश्वरनाथ ‘रेणु’ जैसे कलाकार से गरमाहट भरी मुलाकातें थीं। मनोहर श्याम जोशी जैसे विलक्षण रचनाकार ‘दिनमान’ में उनसे रोज

बतियाते थे। बाद की पीढ़ियों में कवि कमलेश, मलयज जैसे कई रचनाकार उनके स्नेह भाजन थे। इन पंक्तियों के लेखक को भी प्रचुर मात्रा में उनका प्रेम, स्नेह मिला था। साठ-सत्तर के दशक में जब-जब ‘दिनमान’ का दफ्तर 10, दरियागंज, दिल्ली में रहा, सर्वेश्वर जी और मैं, शाम को वहाँ से पैदल सीधे मंडी हाउस आते थे। रास्ते भर तब कोई न कोई मिलता भी जाता- कोई पत्रकार, लेखक, सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता, रंगकर्मी, पाठक। वे रुक कर सबसे दो-चार मिनट बतियाते थे। उसका हालचाल पूछते थे।

कुल मिलाकर, कोई तीन दशकों तक दिल्ली में, उसके सांस्कृतिक जगत में सर्वेश्वर जी की उपस्थिति बड़ी मूल्यवान थी। वह सबको सुलभ थे और मंडी हाउस के छौराहे में, काफी हाउस में (कभी-कभार), कनाट प्लॉस में उन्हें लोगों से घिरा हुआ देखा जा सकता था। वह यात्राएँ

कम करते थे, पर उनकी मंडली बड़ी थी। यह विभिन्न प्रदेशों में फैली थी। राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश से जो भी लेखक-कवि -पत्रकार-सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ता दिल्ली आता था, वह जिनसे मिलने की इच्छा रखता था उस सूची में सर्वेश्वर जी का नाम अवश्य बहुत ऊपर होता था। नंदकिशोर आचार्य जैसे तब के युवा रचनाकार उनसे मिलने आते थे। इस सबकी याद है। अपने समय के चर्चित रंगकर्मी राजेश विवेक, जिन्होंने बाद में फिल्मों में भी नाम कमाया, ('लगान' में उनके उल्लेखनीय काम की याद आती है) भी सर्वेश्वर जी के प्रियभाजन थे। मंडी हाउस में जिधर सर्वेश्वर जी जाते, वह भी उनके साथ हो लेते थे। लेखक, चित्रकार और सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता चंचल जो अब अपने पुरखों के गांव में बस गए हैं। वह भी सर्वेश्वर जी के एक विशिष्ट सहयोगी थे। हमारे रंगकर्मी, साहित्य-प्रेमी मित्र देवेंद्रराज अंकुर (पूर्व-निदेशक, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय) को भी सर्वेश्वर जी के साथ मंडी हाउस में समय बिताने की और कभी-कभार दरियांगंज से मंडी हाउस तक पैदल आने की याद है। ये सारी चीजें मैं एक सांस में, एक ही बैठकी में याद करता चला गया हूँ। नहीं तो सर्वेश्वर जी के कामकाज की, उनसे मिलने-जुलने-बतियाने



राजकमल चौधरी, फणीश्वरनाथ रेणु और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,

और सलाह मांगने वालों की सूची और भी लंबी है।

जिन कलाकारों-रचनाकारों से सर्वेश्वर जी जुड़े, उनके लिए इन्होंने कभी न कभी कुछ लिखा, किया। पलटकर रचनाकारों ने भी उनको किसी न किसी रूप में समादृत किया। मसलन, जे.स्वामीनाथन की धूमिमल गैलरी में आयोजित एक प्रदर्शनी में उन्होंने कविता-पाठ किया, अन्य कवियों के साथ। स्वामीनाथन ने उनसे प्रदर्शनी

**पारिवारिक व्यक्ति के रूप में
तो वह अलग से याद किए
जा सकते हैं। पत्नी के
असामयिक निधन के बाद
उन्होंने अपनी दोनों पुत्रियों
विभा-शुभा को जिस तरह
बड़ा किया, प्रेम और पर्याप्त
चिंता के साथ, वह सचमुच
उल्लेखनीय है।**

का उद्घाटन कराया। कैटलॉग में उनकी कविताएँ प्रकाशित कीं। हिम्मत शाह ने सर्वेश्वर जी के कविता संग्रह ‘खूंटियों पर टैंगे लोग’ के आवरण के लिए अपनी शिल्पकृति का एक चित्र दिया। यह संग्रह सर्वेश्वर जी ने चित्रकार जे.स्वामीनाथन को समर्पित किया। इसी संग्रह के कई पृष्ठों में चित्रकार उमेश वर्मा के किए हुए रेखांकन

प्रकाशित हैं। ब.व.कारंथ निर्देशित, गिरीश करनाड लिखित नाटक ‘हयवदन’ के लिए सर्वेश्वर जी ने गीत लिखे। कुमुदिनी लाखिया और स्वप्न सुंदरी ने अपनी कुछ प्रस्तुतियों में उनकी रचनाओं का प्रयोग किया है। साठ-सत्तर के दशक की दिल्ली में चित्रकारों और रंगकर्मियों की आत्मीय बैठकों में उन्हें कविता पाठ करते हुए देखा-सुना जा सकता था। एक कविता पाठ तो उनकी कविता ‘तेंदुआ’ को सुनने के लिए विशेष रूप से आयोजित हुआ था, जिसमें तैयब मेहता जैसे चित्रकार भी उपस्थित थे।

सर्वेश्वर जी गांधी और मार्क्स के प्रति मानों एक साथ आकर्षित थे। राममनोहर लोहिया के समर्थक समाजवादियों से भी उनका संवाद था। वह सबके लिए सुलभ थे। एक समय ऐसा भी आया था, जब वह एकिटविस्ट

रचनाकार के रूप में भी देखे जा रहे थे। ‘लड़ाई’ (कहानी) ‘बकरी’ (नाटक) ‘कुआनो नदी’, ‘तेंदुआ’ (कविता) आदि उनकी अत्यंत चर्चित रचनाएँ थीं। इमरजेंसी के दिनों में सभी विचारधाराओं के लोग उनकी ओर आशा भरी निगाहों से देखते थे। बंगाली मार्केट में एक अरसे तक रहने के कारण, वह यों भी मानों केंद्र में थे।

**उनकी बहुत-सी
कविताएँ एक बयान,
एक प्रस्ताव, एक
वक्तव्य की तरह भी हैं,
जो अपने समय में,
बहुतों द्वारा हाथों-हाथ
उठा ली गई थीं।**

उनके घर में भी बहुतेरे लोग किसी सुझाव, समर्थन, सहयोग और चर्चा के लिए पहुंचते थे। वह खरी-खरी बातें करनेवालों में थे। बहस को सुनना पसंद करते थे, उलझते कम थे। कभी-कभी जब किसी बात पर गुस्सा चढ़ता था तो उस पर काबू पाना उनके लिए मुश्किल हो जाता था।

मैं और विनोद भारद्वाज चूंकि ‘दिनमान’ में सांस्कृतिक विषयों पर अधिक लिखते थे और उनकी कवरेज के प्रमुख वही थे, सो हम दोनों से उनका संपर्क काफी रहता था।। दिनमान के फिल्म समीक्षक नेत्रसिंह रावत भी उनसे मन लगा कर बतियाते थे और खेल पर लिखने वाले योगराज थानी के साथ उनकी सरस बतकही चलती ही रहती थी। एक पारिवारिक व्यक्ति के रूप में तो वह अलग से याद किए जा सकते हैं। पत्नी के असामयिक निधन के बाद उन्होंने अपनी दोनों पुत्रियों विभा-शुभा को जिस तरह बड़ा किया, प्रेम और पर्याप्त चिंता के साथ, वह सचमुच उल्लेखनीय है।

सर्वेश्वर जी के लेखन में समाज-चिंता पर्याप्त है। साधारण जन उनकी सोच में कई तरह से रहता था। उन्होंने ‘जूता’ शीर्षक से कुछ कविताएँ एक सिरीज में लिखी थीं। इनमें से एक है : ‘जूता-4’ :

तारकोल और बजरी से सना
सड़क पर पड़ा है
एक ऐंठा, दुमड़ा, बेडौल

जूता ।

मैं उन पैरों के बारे में

सोचता हूँ

जिनकी उसने रक्षा की है...

और श्रद्धा से नत हो जाता हूँ।

उनकी बहुत-सी कविताएँ एक बयान, एक प्रस्ताव, एक वक्तव्य की तरह भी हैं, जो अपने समय में, बहुतों द्वारा हाथों-हाथ उठा ली गई थीं। उनके पोस्टर बने थे। उनका पाठ हुआ था। नुक्कड़ नाटकों की तरह भी इस्तेमाल हुई थीं... विद्रोही तेवर वाली थीं। पर, बहुत-सी कविताएँ गहरी ऐंट्रिक संवेदना वाली भी हैं, जैसे 'नदी से-2' को ही देखिए :

जितना ही जल

अंजलि में तुममें से उठा पाता हूँ

मेरे लिए तुम उतनी ही हो।

उससे ही अपनी तृष्णा शांत करता हूँ

उससे ही अपने भीतर बसे सूर्य को

अर्ध्य चढ़ाता हूँ।

और हर बार रीती अंजलि

आंखों और मस्तक से लगा

अनुभव करता हूँ

मैं तुम्हें

अपने भीतर

बहते देख रहा हूँ।

मुझे खुशी है कि जब राजकमल प्रकाशन की प्रतिनिधि कविताओं वाली सिरीज के लिए सर्वेश्वर जी की कविताओं के चयन की बारी आई तो यह काम मुझे सौंपा गया। तब प्रायः उनके हर संग्रह से गुजरते हुए मुझे एक बार फिर इस बात का गहरा अहसास हुआ कि उनकी कविताओं की रेंज बड़ी है। बहुत बड़ी है। उसमें घर-गृहस्थी पर,

प्रकृति पर, पशु-पक्षियों, नदियों-पर्वतों पर, व्यक्तियों पर, सामाजिक-राजनीतिक विषय पर कविताएँ हैं। जो या तो इन विषयों से जुड़ी हैं या इन्हें लेकर प्रतीक, उपमा, बिंबों आदि की रचना करती हैं और विभिन्न प्रकार के काव्य आस्वाद तक हमें पहुंचाती हैं।

उनके काव्य-संसार में लोक की छवियाँ तो हैं ही, लोकधुनें और लोकतत्व भी बहुतेरे हैं। भाषा का भी, उनकी कविताएँ अनूठा-सा प्रयोग करने में सक्षम हैं। लोक से जुड़ी यह कविता देखिए पाठशाला खुला दो महाराज :

पाठशाला खुला दो महाराज
मोर जिया पढ़ने को चाहे।
आम का पेड़ ये
ठूंठे का ठूंठा
काला हो गया
हमारा अंगूठा
यह कालिख हटा दो महाराज
मोर जिया लिखने को चाहे
पाठशाला खुला दो महाराज
मोर जिया पढ़ने को चाहे।
‘ज’ से जर्मीदार
‘क’ से कारिंदा
दोनों खा रहे
हमको जिंदा।
मोर जिया पढ़ने को चाहे।

सर्वेश्वर जी के यहाँ एक पूरा भंडार है- विविध विधाओं की दिलचस्प, प्रासंगिक प्रयोगशील रचनाओं का। यहाँ उनकी थोड़ी सी याद कर सका हूँ। उनसे जुड़ी हुई यादों की भी कमी कहाँ है! बहुत-सी ‘यादें’ हैं, याद आती रहती हैं।

एच-416 पार्श्वनाथ प्रेस्टीज, सेक्टर 93 ए, नोएडा-201304,

मो. 9810973590

प्राची

129



रजनी पांडेय

युवा लेखिका । पोस्ट
डॉक्टरल शोध हेतु अध्ययन
जारी ।

अस्मिता का बदलता अर्थ

अस्मिता शब्द संस्कृत के ‘अस्मि’ से बना है जिसका अर्थ है अहं, यानी अहंकार । हिंदी में यह अंग्रेजी के आइडेंटिटी का पर्याय है । आइटेंटिटी अर्थात् पहचान । अस्मिता का एक अभिधात्मक अर्थ पहचान भी है, अर्थात् किसी व्यक्ति, समूह, राष्ट्र, राज्य, क्षेत्र, भाषा इत्यादि की पहचान ही उसकी अस्मिता है । हालांकि यह अवधारणा महज पहचान भर सीमित नहीं है । यह बहुअर्थी और विकासशील है ।

अस्मिता का एक अन्य अर्थ ‘इयत्ता’ भी है । इयत्ता यानी चेतना के स्तर पर सक्रिय देह और मन से मिलकर बनने वाला अस्तित्व, जिसे अंग्रेजी में ‘सेल्फ’ कहते हैं । इयत्ता के प्रश्न पर योरोपीय दर्शन में प्राचीन काल से ही विचार किया जा रहा है । प्लेटो ने आत्मा (मानस) और देह को अलग-अलग माना और कहा कि आत्मा का अस्तित्व देह से पहले है । सुकरात इस तर्क को आगे ले गए । उन्होंने कहा कि शरीर मरता है, आत्मा नहीं, अतः व्यक्ति की इयत्ता कभी पूरी तरह नष्ट नहीं होती ।

सत्रहवीं सदी में रेने देकार्त (1596–1650) ने इयत्ता पर गहराई से विचार किया । वे कहते हैं कि विचार का अस्तित्व है और चूंकि विचार को मुझसे अलग नहीं किया जा सकता, इसलिए मेरा भी

अस्तित्व है। उनका प्रसिद्ध कथन है, ‘मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ।’ देकार्त ने मनुष्य को एक स्वायत्त कर्ता के रूप में देखा, जिसकी अस्मिता निश्चित होती है।

अठारहवीं सदी के दार्शनिक डेविड ह्यूम (1711–1776) ने इयत्ता के प्रश्न पर देकार्त से भिन्न मत देते हुए कहा कि मनुष्य के मन में एक चीज की कई अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ होती हैं। उन्होंने मनुष्य की इयत्ता को अनुभूतियों और संवेदनाओं का बंडल कहा।

व्यक्ति जब नए-पुराने अनुभवों से गुजरता है तो उसके बंडल में भी परिवर्तन होता है, फलतः उसकी इयत्ता भी बदल जाती है। देकार्त ने इयत्ता को अपरिवर्तनशील माना था, जबकि ह्यूम ने परिवर्तनशील।

19वीं सदी के अस्तित्ववादी दार्शनिक सोरेन आबी कीर्केगार्ड (1813–1855) ने व्यक्ति इयत्ता को अति महत्वपूर्ण मानते हुए मानवीय अस्तित्व को किसी भी

नैतिकता, नियम और समाज से ऊपर माना। उनके लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता और इच्छा ही सर्वोपरि है। कीर्केगार्ड जिन दिनों मानवीय अस्तित्व संबंधी अपनी ये स्थापनाएँ गढ़ रहे थे, उन दिनों पूरे यूरोप में पूँजीवाद तेजी से अपना पैर फैला रहा था। अस्तित्ववादियों को यह डर था कि कहीं पूँजीवादी समाज का दबाव मनुष्य को उसकी सच्ची इयत्ता से वंचित कर स्टीरियोटाइप (रूढ़िबद्ध) न बना दे।

अस्तित्ववादियों के व्यक्तिवादी अर्थ से अलग मार्क्सवाद में अस्मिता का अर्थ बिलकुल अलग है। यहाँ व्यक्ति नहीं समाज महत्वपूर्ण है। इसलिए इसमें व्यक्तित्व का विलय या अस्मिता का निषेध महत्वपूर्ण प्रश्न है। किंतु अस्मिता के अतिक्रमण के लिए भी अस्मिता का होना जरूरी है।

इसलिए माना गया है कि सर्वहारा वर्ग के साथ व्यक्ति को देह और मन दोनों स्तरों पर तदाकार होना है। मार्क्सवाद में व्यक्ति की अस्मिता अर्जित की हुई एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति की पहचान वर्ग से होती है।

मार्क्स की परंपरा में ही एमिल दुर्खाइम (1858–1917) ने मनुष्य की इयत्ता को समाज की उपज माना। वे कहते हैं कि समाज व्यक्तियों से मिलकर नहीं बना है, बल्कि व्यक्ति समाज की उपज है। सामाजिक संस्थाओं के भीतर एक ऐसी शक्ति होती है जो अपने सहभागियों से एक निश्चित व्यवहार की मांग करती है। सामाजिक संस्थाओं के भीतर उसका आर्थिक विन्यास एक महत्वपूर्ण कारक है। दुर्खाइम अपने विवेचन में दिखलाते हैं कि कैसे औद्योगिक समाज में व्यक्ति अपनी इयत्ता का अर्थग्रहण एक विशिष्ट संदर्भ में ही कर पाता है।

औद्योगिक समाज से पहले की अवस्था में मूल्यों और मानकों का फासला इतना अधिक नहीं रहता था, क्योंकि वहाँ आर्थिक आधार पर श्रम का विभाजन बहुत कम या न के बराबर होता था। औद्योगिक समाज में यह रूप बदल गया। काम के अलग-अलग रूपों के कारण व्यक्ति के अनुभव में विविधता आई। इस विश्लेषण के आधार पर दुर्खाइम ने यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति की अस्मिता अपने आप में प्राथमिक न होकर समाज के आर्थिक विन्यास की देन है।

इयत्ता संबंधी चिंतन को हरबर्ट मीड (1863–1931) ने और आगे बढ़ाया। उनका मानना था कि इयत्ता और कुछ नहीं, दूसरों के दृष्टिकोण को आत्मसात करने की प्रक्रिया का परिणाम है। वे कहते हैं कि व्यक्ति जब अपना व्यक्तित्व निर्मित करता है तब उसकी नजर में हमेशा अन्य होते हैं। वह अन्य के लिए अन्य के अनुरूप खुद को तैयार करता है। वह उतना ही आत्मसचेत होता है जितना वह समझ पाता है कि दूसरे उसे किस रूप में देख रहे हैं। मीड के इस चिंतन को ‘सिम्बोलिक इंटरेक्शनिस्ट थियरी’

के नाम से जाना जाता है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में सिग्मंड फ्रायड (1856–1939) ने मनुष्य की अस्मिता निर्माण संबंधी प्रक्रिया पर गहन

विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत किया। उनका विचार था कि बच्चे की अस्मिता अपने आस-पास के लोगों के रवैये और नजरिये को ग्रहण करने के फलस्वरूप निर्मित होती है। इस आधार पर उन्होंने मनुष्य की इयत्ता को ईड, ईगो और सुपर ईगो –इन तीन भागों में विभक्त किया। उनके अनुसार ईड अवचेतन का संवेग है, जिसका सिद्धांत है आनंद। ईगो, ईड के सामाजिक रूप से अनैतिक व्यवहार को रोकता है और संवेगों और इच्छाओं का दमन करता है। यह मानस का तार्किक भाग है, जिसका संबंध वास्तविकता से है। यह सामाजिक रूप से स्वीकार्य तरीकों से ईड की इच्छाओं

को पूरा करता है। सुपर-ईगो का संबंध सामाजिक-नैतिक मान्यताओं से है जो मानस का अंग बन चुकी हैं। फ्रायड के अनुसार ईड, ईगो और सुपर ईगो की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही किसी व्यक्ति की अस्मिता निर्मित होती है। फ्रायड मानवीय अस्तित्व की संरचना को सेक्सुअलिटी के ईर्द-गिर्द ही पारिभाषित करते हैं, उसके सामाजिक, सांस्कृतिक कारणों की गहराई में नहीं जाते।

मानवीय अस्तित्व निर्माण संबंधी प्रक्रिया को लकाँ (1901–1981) ने मिरर स्टेज थियरी के द्वारा उद्घाटित किया। उनके अनुसार छह महीने से डेढ़ साल की अवधि में ही बच्चा अपना अस्तित्व समझने लगता है। वह खुद को जब आईने में देखता है तो उसे लगता है कि वह किसी और को देख रहा है। छवि को अन्य समझते ही उसे अपने और दूसरे के बीच फर्क करना आ जाता है (मैं और तुम का ज्ञान)। इसके पश्चात बच्चा भाषा की दुनिया में कदम रखता



है, भाषा का संसार यानी पिता द्वारा सृजित दुनिया, सांकेतिक जगत। वह अपनी माँ से अलग होकर ही इस सांकेतिक जगत में प्रवेश करता है। लकाँ का मानना है कि मिरर स्टेज थियरी और भाषा का सांकेतिक दायरा समाज में व्यक्ति की अस्मिता निर्मित करते हैं।

मिशेल फूको (1926–1984) व्यक्ति की अस्मिता को समाज द्वारा नियंत्रित और निर्धारित मानते हैं। उनका कहना है कि आधुनिक सत्ता या अनुशासन कायम करने वाली व्यवस्था अपनी कमतर, असामान्य, पागलपन जैसी कसौटियों के



आधार पर व्यक्तियों को नियंत्रित करती है। इस नियंत्रण में प्रतिशोध का नहीं, बल्कि सुधार का बोध छिपा होता है। इसका उद्देश्य होता है कि व्यक्ति समाज की प्रदत्त कसौटियों या मानकों को स्वीकार कर ले। अनुशासन व्यवस्था द्वारा स्थापित इन

मानकों का वर्चस्व इतना चौतरफा है कि व्यक्ति का व्यवहार और व्यक्तित्व उन्हीं मानकों के अनुसार बदल जाता है।

अस्मिता के अर्थ उद्घाटन के क्रम में अब तक अस्मिता के अर्थ का जो विकास दिखलाया गया और इस क्रम में जिन दार्शनिकों के विचारों को रखा गया है, उन सबका संबंध व्यक्ति अस्मिता से है। इस व्यक्ति अस्मिता का ही आधुनिक विकसित रूप है समुदायिक अस्मिता, जिसे ‘अस्मिता की राजनीति’ और सैद्धांतिक शब्दावली में ‘अस्मिता विमर्श’ कहते हैं।

‘अस्मिता की राजनीति’ का संबंध उदारवादी लोकतांत्रिक प्रणाली से है। इसमें समाज के हाशिये पर पड़े समुदाय अपने सबलीकरण और अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं। इसके अंतर्गत भाषा, संस्कृति, नस्ल, धर्म, जातीयता, जाति, जेंडर इत्यादि मुद्दों को आधार बनाकर समुदाय अपने अधिकारों की मांग करते हैं। इन्हें कभी समाज के हाशिये पर ठेला

गया था। अब ये समुदाय मुख्यधारा से अलग दिखने वाली अपनी पहचान को मान्यता देने तथा उसका सम्मान करने का आग्रह करते हैं। 20वीं सदी की शुरुआत में यूरोपीय देशों में मताधिकार के लिए स्त्री दलों का एक साथ होना अस्मिता की राजनीति का पहला उदाहरण है। इसके अलावा साम्राज्यवादी देशों से गुलाम देशों की आजादी का संघर्ष भी राष्ट्रीय अस्मिता की राजनीति है।

अस्मिता की राजनीति की खास बात यह है कि यह

यानी एक स्त्री जब भी अपनी अस्मिता की बात कर रही होती है तब उसके सामने एक पुरुष रहता है, एक दलित जब अपनी अस्मिता की बात करता है, तब उसके सामने एक सर्वर्ण होता है, एक अश्वेत जब अपनी अस्मिता की बात करता है तब उसके सामने एक श्वेत होता है

अपने राजनीतिक हितों को ध्यान में रखकर अपनी अस्मिता निर्धारित करती है। अतः यहाँ प्रामाणिकता और स्थिरता दोनों का अभाव है। अस्मिता की राजनीति के राजनीतिक अर्थ को खोलते हुए अभय कुमार दुबे ने लिखा है- ‘कोई जरूरी नहीं कि राजनीतिक मकसद से ओढ़ी हुई यह अस्मिता अपने आप में उसकी प्रामाणिक इयत्ता की निशानी ही हो। यही कारण है कि अस्मिता की राजनीति में भाग लेते हुए भी व्यक्ति अपनी दूसरी अस्मिताओं को नहीं छोड़ता और अक्सर उनके साथ

सह-अस्तित्व में रहता है। किसी विशेष समय और परिस्थिति में कोई एक अस्मिता तत्कालीन राजनीति में गोलबंदी का माध्यम बनती है जो कालांतर में बदल भी सकती है।’ अर्थात् अस्मिता की राजनीति परिवर्तनशील होने के साथ-साथ अस्मिताओं की राजनीति है क्योंकि एक अस्मिता के साथ कई और अस्मिताएँ भी सह-अस्तित्व में रहती हैं, ताकि राजनीतिक स्वार्थ के लिए समय-समय पर उनका प्रयोग किया जा सके।

अस्मिता की राजनीति आमतौर पर उपेक्षा और दमन के शिकार समूहों का लोकतांत्रिक हथियार है, किंतु कभी-कभी

यह प्रतिक्रिया का परिणाम भी होती है। जैसे स्त्री आंदोलन की प्रतिक्रिया में चला पुरुषों का आंदोलन या एससी, एसटी, ओबीसी आरक्षण की प्रतिक्रिया स्वरूप जाट आरक्षण और पटेल समुदाय के आरक्षण की मांग।

अस्मिता की राजनीति अकेले नहीं की जाती। इसके लिए हमेशा एक अन्य का होना ज़रूरी है, जैसा कि नामवर सिंह ने कहा है, ‘अस्मिता की राजनीति में द्वैत आवश्यक है। जैसे ही आप ‘मैं’ कहेंगे वैसे ही ‘तुम’ अवश्य आएंगा। ‘मैं’ का अर्थ तभी बनता है जब एक ‘तुम’ हो। इसलिए वे ‘मैं’ और ‘तुम’ को मिलाकर हम की दिशा में न जाकर अस्मिता की राजनीति बराबर चाहती है कि ‘मैं’ में रहे और तुम ‘तुम’ रहे, बल्कि ‘वह/वे’।

यानी एक स्त्री जब भी अपनी अस्मिता की बात कर रही होती है तब उसके सामने एक पुरुष रहता है, एक दलित जब अपनी अस्मिता की बात करता है, तब उसके सामने एक सर्वर्ण होता है, एक अश्वेत जब अपनी अस्मिता की बात करता है तब उसके सामने एक श्वेत होता है, तथा गुलाम औपनिवेशिक राष्ट्र जब अपनी अस्मिता की बात करते हैं तब उनके सामने शासक राष्ट्र होते हैं। इस राजनीति में न तो स्त्री चाहती है कि वह पुरुष बन जाए न ही दलित चाहता है कि वह सर्वर्ण बन जाए, न ही अश्वेत चाहता है कि वह श्वेत बन जाए और न ही गुलाम और औपनिवेशिक राष्ट्र यह चाहते हैं कि वे शासक राष्ट्र हो



जाएँ। इनकी लड़ाई अपनी अलग पहचान को लेकर है, अपने अधिकारों को लेकर है, उनकी अलग अस्मिता को

मान्यता मिले इसे लेकर है, इसलिए यहाँ 'मैं' मैं रहता है और 'तुम' तुम।

हिंदी में अंग्रेजी के आइडेंटिटी के संदर्भ में अस्मिता शब्द का प्रचलन अज्ञेय ने 1950 के आस-पास किया। अस्तित्ववाद के साथ आनेवाले एक विशेष प्रकार के व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने इस शब्द को ईजाद किया। इस नाते हिंदी में अस्मिता का एक अर्थ है- व्यक्तिवाद या

वैयक्तिक पहचान। अज्ञेय ने जब आइडेंटिटी के अर्थ में हिंदी में अस्मिता शब्द का प्रयोग किया। उस समय उनका उद्देश्य था प्रगतिशील कविता के जनसमूह से अलग कविता में व्यक्ति को स्थापित करना। यहाँ अस्मिता व्यक्ति-अस्मिता का पर्याय है, जिस कारण अज्ञेय को अस्तित्ववादी कवि कहा गया।

अस्मिता के इस अस्तित्ववादी संदर्भ से अलग आज हिंदी में जिन अर्थों में अस्मिता की चर्चा हो रही है उसका संबंध अस्मिता की राजनीति से है। 70 के दशक से भारत में क्षेत्रीय दलों और क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों का उभार हुआ। फलस्वरूप धार्मिक अस्मिता, प्रांतीय अस्मिता, भाषाई अस्मिता, दलित अस्मिता, स्त्री अस्मिता, जनजातीय अस्मिता इत्यादि इन सभी अस्मिताओं को आधार बनाकर राजनीतिक दल अपनी-अपनी राजनीति करने लगे। अस्मिता की इस राजनीति से एक ओर जहाँ संप्रदायवाद, भाषावाद, प्रांतवाद की संकीर्णता का समावेश हुआ, वहीं दूसरी ओर हाशिए पर पड़े समूहों को मुख्यधारा में आने का अवसर भी मिला। दलित और स्त्री सामाजिक,



सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी स्तरों पर अपनी बराबरी की मांग करते हुए आगे आए। साहित्यिक विधाओं में भी ये अस्मिताएँ अपनी आवाज मुखर करते हुए एक अलग धारा की मांग करने लगीं। फलस्वरूप दलित साहित्य, स्त्री साहित्य, आदिवासी साहित्य जैसी अवधारणाएँ प्रकाश में आईं।

अस्मिता के उपर्युक्त विविध अर्थों के मद्देनजर कहा जा सकता है कि व्यक्ति की कोई एक अस्मिता नहीं होती। वैयक्तिक अस्मिता, पारिवारिक अस्मिता, जातीय अस्मिता, वर्गीय अस्मिता, राष्ट्रीय अस्मिता, क्षेत्रीय अस्मिता, भाषाई अस्मिता, पेशे की अस्मिता, काल की अस्मिता, यौनिक अस्मिता आदि पहचान के जितने रूप हैं उतनी ही अस्मिताएँ हैं। अतः जब अस्मिता का अर्थ जानना हो तो उसके व्यापक संदर्भों को ध्यान में रखना चाहिए।

30, भैरव दत्त लेन, नंदी बगान, सलकिया,
हावड़ा- 711106 ईमेल : rajanivatsal@gmail.com

सतीश आचार्य
के दो काटून

मीडिया—दंश

1



2





मारवाड़ी राजबाड़ी

कुसुम खेमानी

वरिष्ठ लेखिका। ‘सच कहती कहानियाँ’, ‘एक अचम्भा प्रेम’ (कहानी संग्रह)। ‘एक शख्स कहानी-सा’ (जीवनी)। ‘लावण्यदेवी’, ‘जड़ियाबाई’, ‘लालबत्ती की अमृतकन्या’ (उपन्यास) आदि चर्चित रचनाएँ।

आज यह महारानी जल्दी घर जाकर क्या तूफान उठाना चाहती है, के रेशों को मन ही मन खोलता हुआ वह नेपाली पंछी, जब उस चंचल तितली को लेकर लौटा तो एक झापाटे में वह महामाया असल राजबाड़ी के लम्बे-चौड़े राजपूत ठाकराजी के कान में कुछ फुसफुसाती नजर आई और ठाकरा जी भी बाअदब-बामुलाहिजा के अंदाज में पूरे मनोयोग से उसकी बात सुनते दिखे, बहादुर की खुदबीनी करने पर उसे पता चला कि इस महारानी ने उनकी बोली में बात कर उन्हें मोह लिया है।

यह दृश्य देखकर बहादुर ने अपने दोनों हाथ जोड़कर कहा रु ‘हे मेरी नौटंकी! तुम बांगाली के सामने बांगाली बन जाता है, माँ-बाबूजी के सामने हिन्दुस्तानी, बाबू का अंग्रेज अफसर के सामने एकदम क्रिस्तान बनकर गिटिर-पिटिर करने लगता है और इस ठकराजी के सामने कैसा-कैसा तरह का मारवाड़ी बोलता है, तुम आखिर...? बहादुर के वाक्य को बीच में ही रोक कर वह “दशभुजाधारी देवी” बोल पड़ी, “बहादुर रामरो छोरा ‘ऐ माँ’ बेबी साब्बाश तुम तो नेपाली भी जानता है।” उसके भ्रम को जस का तस छोड़ वह तेजी से आगे बढ़ी और दोनों राजबाड़ियों को विभाजित करती प्राचीर के अंत में जाकर खड़ी हो गई। दरअसल, यह मारवाड़ी राजबाड़ी इस असल राजबाड़ी के पुराने मालिकों द्वारा ही अपनी तवायफ प्रेयसी को उपहार स्वरूप भेंट दी गई थी। यह विभाजन प्राचीर वर्तमान मालिकों द्वारा

बनाई गई थी जिनके मुसाहिबों ने प्राचीर के अंत में एक ‘खोंप’ सी बना ली थी जिससे वे असल राजबाड़ी के कीमती सामानात आराम से मारवाड़ी राजबाड़ी के सामने से ले जाते थे, जो असल राजबाड़ी के भारी-भरकम पहरेदारों के सामने संभव नहीं था। यह सिलसिला अभी भी नौकरों के बीच जारी था।

बहादुर ने जब कमर पर दोनों हाथ धरे, चेहरे पर मुस्कान का पहाड़ लिए, उस वीर बालिका को उस ‘खोंप’ के पास खड़ा देखा तो उसे साँप ही सूंघ गया, उसका सिर चक्कर घिन्नी-सा धूमने लगा और वह ‘हे काली कलकत्ते वाली’ वाक्य को मंत्र की तरह उचारते हुए झट से उस ‘भवानी’ के पास पहुँच कर शब्दों को चाशनी में डुबो-डुबो कर अत्यधिक मीठे स्वर में कहने लगा – प्यारा बेबी! आज तुम इस कोना में क्यों खड़ा है, आओ जल्दी से घर चलें! माँ तुम्हारा चिंता कर रहा होगा, आओ बेबी चलें।”

“बहादुर भैया, तुम मुझे ज्यादा उल्लू मत बनाओ। सच कहो, मुझे इस ‘खोप’ के पास खड़े देखकर तुम्हारी जान निकल गई है ना? सारे दिन कहते रहते हो कि बेबी हम तुमको सारा दुनिया से ज्यादा प्यार करता है, छूटे कहीं के?” उस समय टेढ़ा-बाँका मुँह बनाकर उसकी कूढ़-कढ़ाती हुई मुख-मुद्रा देखने के काबिल थी। यदि संयोगवश नाट्यशास्त्राचार्य भरत मुनि इसे देख लेते तो उन्हें अपने नाट्य शास्त्र में एक अध्याय इस छुटकी-सी विशिष्ट नायिका की भंगिमाओं पर अवश्य ही जोड़ना पड़ता।



भोला भंडारी बहादुर मन ही मन यह गुनता हुआ कि इस पटाखाबम को इस रास्ते का पता कैसे चला? और यह देवी इस रास्ते की खोज कर क्या गुल खिलाने वाली है? उसे टटोलने की कोशिश करता रहा, और एकाध बार चिरौरी कर उससे पूछा भी, पर उस बंदी ने उसका हाथ झटक दिया और उसे यह राज नहीं बताया। मन-मसोस

कर उसके साथ घसिट्टा सा बहादुर और ऋतु जब घर के सामने पहुँचे तो उन्हें दरवाजे पर बग्धी खड़ी दिखी। बग्धी देखते ही ऋतु के पर निकल आए और वह उड़ कर माँ-बाबूजी के दरबार में जा पहुँची।

“माँ, क्या आपलोग बाहर जा रहे हैं? दरवाजे पर बग्धी खड़ी है, और बाबूजी भी झकाझक कुर्ता-धोती पहन कर तैयार हैं।” माँ ने अपनी कुहनियों तक के झालरदार ब्लाऊज वाली तर्जनी



से कान के पीछे हल्का सा इत्र लगाया और बोलीं - “हाँ, बेटा, हमलोग ‘नटी-विनोदिनी’ नाटक देखने जा रहे हैं। सुना है, इसे अनेक बड़े लोगों की प्रशंसा और आशीर्वाद प्राप्त हुए हैं।”

सारी दुनिया की सादगी और भलाई चेहरे पर समेट कर वह महामना बोली - “माँ क्या आपलोगों को आने में देर होगी?”

“बेटा, कुछ देर तो हो ही जाएगी इसलिए मैं चम्पा को कह दूँगी कि तुम्हारे पास ही रहे।

“नहीं माँ, तुम मेरी चिन्ता मत करो। मुझे बहुत पढ़ाई करनी है, और रामू भैया, बहादुर भैया, महाराज जी ये सब भी तो घर पर हैं।”

बेटी के मुँह से ऐसी समझदारी भरी बातें सुन कर, माँ पुलकित हो गई और लाड़ में उसे अपने से चिपका कर बोली, “मेरी बेटी, दुनिया की सबसे अच्छी बेटी है।” इस

दृश्य को देखकर आदमजाद की तो हैसियत ही क्या! वह ऊपर बैठा नट तक चकरा गया था, क्योंकि वह जानता था कि भविष्य के गर्भ में तो कुछ और ही छिपा है।”

इधर माँ-बाबूजी नाटक के लिए निकले और उधर वह तूफान मेल घेरदार फार्क पहने हाथ में एक छोटा सा कागज लिए बहादुर की पीठ पर हल्का सा धौल मार कर यह बोलती नजर आई, “बहादुर भैया, झट से उठिए, चलना है।”

मुसाहिब इधर-उधर काफी खोजबीन कर रहे थे कि अचानक उन्हें कोने में दुबकी जर्मीदार बाबू की लाडली सियामी बिल्ली दिखाई पड़ी, फिर क्या था एक मुसाहिब ने उसे लपक कर उठाया और उसे अपने दुप्पटे में लपेट कर यों ले चला गोया वह बिल्ली न हो, इस राजबाड़ी का नवजात वारिस हो।

तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता है, मुझको मराने का काम मत करो” कह कर वह जूँड़ी बुखार के मरीज सा काँपने लगा और वह देवी? वह! तीन-चार वर्ष की उम्र में बड़े मामा के साथ दिल्ली में देखी हुई राष्ट्रपति की झाँकी के चारों ओर अकड़ कर खड़े सेनाध्यक्षों की तरह तन कर खड़ी रही। बहादुर ने उसे बहुत ‘बहलाने-फुसलाने’ की कोशिश की, पर वह तो अंगद के पैर सी वैसी की वैसी अड़ी रही। झख मारकर बहादुर ने अंतिम शस्त्र चलाते हुए कहा - “बेबी राजबाड़ी का गेट पर तो बड़ा-बड़ा दरवान खड़ा है, हमलोग अंदर घुसेगा कैसे? वे लोग तो हमको बंदूक से मार ई डालेगा?” सुनकर उस मूर्ति में हरकत हुई और वह लेफ्ट

“कहाँ? कहाँ जाना है बेबी, इतना रात को? उसके प्रश्न को अनसुना कर उसे हाथ से खींच कर उठाते हुए ठुनकती-सी ऋतु जी बोर्ली - भैया, आज जलसा है ना? याद है आपने पशुपतिनाथ की कसम खाई थी, कि मुझे फूलबाई के दर्शन कराएँगे, तो चलिए?”

“हे मेरा अम्मा! हम तुमको बड़ा कोठी में ले जाने का वादा तो किया नहीं था। बेबी हम

राइट की मुद्रा में बहादुर को हाथ से पीछे आने का इशारा करते हुए पैरों को दबाकर रखती हुई आगे बढ़ चली। वशीकरण मंत्र मारे हुए जीव की तरह भौंचकका सा बहादुर उस देवी के चरण चिन्हों पर संकरी गलियों से होते हुए पिछवाड़े की ओर चल पड़ा और आश्चर्यजनक ढंग से वे लोग रंग-दरबार के पिछले दरवाजे पर जा खड़े हुए।

बहादुर आँखे फाड़े भारी मखमली पर्दों पर तीन-चार तलिया ‘झूमरों’ से जगमगाते उस परी लोक को देख कर सिसकारी भरने वाला ही था कि उसे रास्ते भर दी हुई ऋतु की हिदायतें याद आ गईं, जिसमें अंत की यह चेतावनी भी शामिल थी कि यदि बहादुर कोई भी भूल करेगा तो वह वीरबालिका वहाँ से रफू-चक्कर हो जाएगी और यदि फिर भी वे लोग पकड़े गए तो वह इजलास में सारा दोष बहादुर के सिर मढ़ देगी।

साठ वर्ष पहले घटी इस घटना का एक ऐसा पूर्ण-चित्र ऋतु की आँखों के सामने आ खड़ा हुआ था कि वह स्वयं अपनी पूर्वदीप्ति में उभरे इस सरस, सजीव, छायाचित्र को देखकर स्तंभित थी। उसे अपनी चित्रोपम पूर्ण स्मृति का ज्ञान तो था, और उसने अपनी इस विलक्षण प्रतिभा से बचपन से ही औरों को एवं स्वयं को भी चौंकाया था, पर



एक साधारण सी घटना उसे सही नुक्तों सहित इतनी गहराई से याद होगी, यह उसकी भी सोच से परे था।”

तभी एक आवाज ने उसके स्मृतियों के रेले को वापस पटरी पर ला दिया। फूलबाई क्षत्थक के परण में चक्कर पर चक्कर लगा रही थीं कि पर्दे के नीचे रखा पीतल का एक बड़ा सा गमला लुढ़क गया। महफिल तारसप्तक पर अपने पूर्ण यौवन में सुर, सुरा और सौन्दर्य को साथ लिए मय ताल-छंदों के गमगमा रही थी कि इस विवादी स्वर ने

फूलबाई के झुक-झुक कर लखनवी तहजीब के जलवे और सलीके से ऋतु स्तंभित थी, और उसे पक्का विश्वास हो गया था कि हो न हो बड़े जर्मीदार बाबू ने इन्हें परीलोक से चुराया है। वह अपनी बड़ी आँखों को बिना पलक झपकाए एकटक उस परी को देखे जा रही थी।

बिल्ली न हो, इस राजबाड़ी का नवजात वारिस हो। जर्मीदार साहब ने आँख के इशारे से नृत्य को वहीं से उठाने का आदेश दिया, जिस ताल पर वो थम गया था।

सारी महफिल उस समय ‘अश् अश् वाह-वाह’ कर झूम उठी जब फूलबाई ने ताल के पौने हिस्से से उसे ज्यों का त्यों का उठा लिया और उसी गति से चक्कर लगाने लगी। उनके इस अभूतपूर्व तालमेल पर न केवल धरती के आदमी बल्कि आकाश के देवता तक चकित रह गए थे। जर्मीदार साहब ने उनकी इस कारीगरी पर मुग्ध हो कर अशर्फियों से भरी एक थैली उन पर न्यौछावर कर दी।

वहाँ तहलका मचा दिया। जर्मीदार बाबू के मुसाहिब बिजली की गति से उस कोने की ओर दौड़े। इकहरे बदन की दुबली-पतली ऋतु ने अपनी साँस रोक ली और मखमली मोटे पर्दे से एकाकार होकर अस्तित्वहीन हो गई। मुसाहिब इधर-उधर खोजबीन कर ही रहे थे कि अचानक उन्हें कोने में दुबकी जर्मीदार बाबू की लाडली सियामी बिल्ली दिखाई पड़ी, फिर क्या था एक मुसाहिब ने उसे लपक कर उठाया और उसे अपने दुप्पटे में लपेट कर यों ले चला गोया वह



सिर को जमीन तक लाकर फूलबाई ने बिना ताल भंग किए ख़ास अदायगी से उस थेली को चूमते हुए उसे अपने सिर से छुआया और फिर उसे आहिस्ता से अपनी परिचारिका के बड़े हुए हाथ में थमा दिया ।

फूलबाई के झुक-झुक कर

लखनवी तहजीब के जलवे और सलीके से ऋतु स्तंभित थी, और उसे पक्का विश्वास हो गया था कि हो न हो बड़े जर्मांदार बाबू ने इन्हें परीलोक से चुराया है । वह अपनी बड़ी आँखों को बिना पलक झपकाए एकटक उस परी को देखे जा रही थी कि बहादुर का खींचा हुआ हल्का हाथ भी उसे वज्र सा कठोर लगा और वह आकाश में उड़ना भूल सीधी धरती पर आ गिरी ।

बहादुर उसे खींचता हुआ ले जा रहा था और वह अपनी खुली आँखों से कुछ न देखती हुई खिंची चली जा रही थी । बहादुर ने चम्पा आया को इशारे से बुलाया और दोनों ने मिल कर किसी और ही लोक में विचरण करती उस महामाया की काया को विस्तर पर लेटा दिया और आश्चर्य एवं विस्मयकारी है यह तथ्य कि ऋतु एक भी शब्द बोले बिना एक मूर्ति की तरह सो गई ।

आज की ऋतु साक्षी-चेता की तरह इस दृश्य की मीमांसा कर इस नतीजे पर पहुँची कि एकदम अनोखी अनजान दुनिया से प्रथम साक्षात्कार होने पर उस छोटी-सी बच्ची का यह हश्च एकदम स्वाभाविक था । आज साढ़े छह दशक बाद भी जब एक उम्रदराज और परिपक्व महिला उसके स्मरण मात्र से इतनी प्रभावित हो रही है, तो उस बच्ची का अपनी सुधबुध खो बैठना तो एक साधारण-सी बात है ।

3 लाउडन स्ट्रीट, कोलकता-700017

वार्षि

ऑनलाइन पढ़ें

मिलकर

बांटकर

पाठक ही हैं हमारा भरोसा !

ग्राहक बनें

वार्षिक 300/- रुपये ■ रजिस्टर्ड डाक से 240 रुपये अतिरिक्त
 Bharatiya Bhasha Parishad के नाम चेक से भुगतान करें
 या नेफट द्वारा : कोटक महिंद्रा बैंक, शाखा : लाउडन स्ट्रीट,
 A/c no. 8111974982, IFSC Code KKBK0006590
 पर उपर्युक्त नाम से किए जा सकते हैं।

सहयोग करने के लिए संपर्क : मीनाक्षी दत्ता मो. 9163372683

बेहतर लेखन - बेहतर वागर्थ
पाठकों की वापसी का अभियान!

लेखकों से अनुरोध है कि वह छोटी रचनाएँ भेजें जो अप्रसारित हों।

प्रकाशक और मुट्ठक कुमुम खेमानी द्वारा भारतीय भाषा परिषद् 36ए शेक्सपियर सरणी, कोलकाता 17 के लिए प्रकाशित
 और मुद्रित। सत्यघुण एम्प्लाइज को-ऑपरेटिव इण्डस्ट्रीयल सोसाइटी लि., 13 ग्रन्ज सरकार स्ट्रीट, कोलकाता 700072
 द्वारा मुद्रित। संपादक : शंभुनाथ